अनन्य

‘हिंदी की नयी उड़ान’

मासिक पत्रिका

नवम्बर-2022

अनन्य

‘हिंदी की नयी उड़ान’

प्रबंध संपादक
अनूप भार्गव

संपादक
डॉ. जगदीश व्योम

कला संपादक
विजेंद्र एस. विज

भारतीय कौंसलावास, न्यूयॉर्क की हिंदी पत्रिका

अनन्य

मासिक पत्रिका, नवम्बर-2022

भारतीय कौंसलावास, न्यूयॉर्क की हिंदी पत्रिका

प्रबंध संपादक

अनूप भार्गव

संपादक

डॉ॰ जगदीश व्योम

कला संपादक

विजेन्द्र एस. विज

संपादन सलाहकार

डॉ॰ हरीश नवल

तकनीकी सलाहकार

बालेन्दु शर्मा दाधीच

संपादन सहयोग

स्वरांगी साने / आभा खरे

व्यवस्था

अमित खरे / गीता घिल्लोरिया

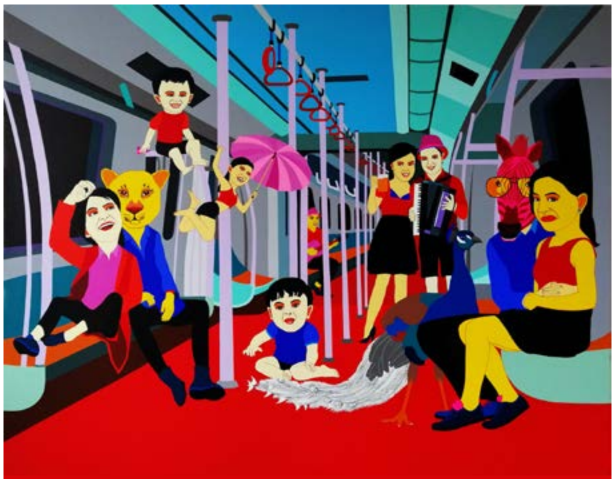

आवरण चित्र : फरहाद हुसैन
Untitled
50x48 inch, Acrylic on Canvas
Farhad Hussain

सर्वाधिकार सुरक्षित

पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के अन्यत्र उपयोग हेतु लेखक / प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है।

प्रकाशित सामग्री हेतु सम्बंधित लेखक पूरी तरह से उत्तरदायी होंगे।

आइकॉन पर क्लिक करने से
आप ऑडिओ रिकॉर्डिंग सुन सकते हैं

आइकॉन पर क्लिक करने से
आप विडियो रिकॉर्डिंग सुन सकते हैं

अनुक्रम

पृष्ठ संख्या

संपादकीय
डॉ॰ जगदीश व्योम 06

गीत/नवगीत : डा. धनंजय सिंह 07
पाँच नवगीत

विशेष लेख : गोवर्धन यादव 09
पातालकोट : धरती पर एक अजूबा

ग़ज़ल : अशोक रावत / चार ग़ज़लें 16

लघुकथा : मीनू खरे 18
सीक्रेट-पार्टनर
क्लीन बोल्ड

कविता : रचना श्रीवास्तव / दो कविताएँ 20

लेख : डा. सुरेन्द्र विक्रम 22
हिंदी बालसाहित्य : कुछ बिन्दु, कुछ विचार

ग़ज़ल : द्विजेन्द्र ‘द्विज’ / पाँच ग़ज़लें 27

लोक कला : नीरज छिब्बर 30
छऊ नृत्य

बाल साहित्य : डॉ. जगदीश व्योम 34
बाल मन की संवेदनाएँ और बाल गीत

गीत/नवगीत : रंजना गुप्ता / दो नवगीत 39

कहानी : अशोक भौमिक / एपिटाफ 40

कला : सुमन कुमार सिंह 46
मानवाधिकारों का पहरुवा : ऐ वेईवेई

चित्र / चित्रकार : भानु श्रीवास्तव 50
री-इंटरप्रिटेशन

दो शब्द...

‘अनन्य’ का नवंबर–2022 अंक आपको सौंपते हुए प्रसन्नता हो रही है। अनन्य के अंक अब कई देशों से शुरू हो गये हैं, यह सुखद है। इन अंकों के माध्यम से संबन्धित देश में रहने वाले प्रवासी भारतीयों की रचनाओं से परिचित होने का अवसर तो मिलेगा ही साथ ही उन देशों की साहित्यिक व सांस्कृतिक झाँकी भी देखने को मिल सकेगी, साथ ही वैश्विक स्तर पर यह जानकारी भी हो सकेगी कि हिंदी और भारतीय संस्कृति को उन देशों में रह रहे प्रवासी भारतीयों ने किस तरह सुरक्षित रखा हुआ है। इसके लिए अनूप भार्गव जी का यह प्रयास हमेशा याद किया जाएगा। इस अंक में जिन रचनाकारों की रचनाएँ प्रकाशित की जा रही हैं उन सभी को बधाई और सभी पाठकों के साथ-साथ विजेन्द्र विज और आभा खरे एवं अनन्य की पूरी संपादकीय टीम को हार्दिक बधाई।

डा॰ संतोष चौबे जी द्वारा भोपाल से शुरू किए गये ‘विश्व रंग’ की अनुगूँज पूरी दुनिया में सुनाई दे रही है, विश्व भर में साहित्य और संस्कृति के मध्य एक सेतु निर्माण का कार्य करने के लिए संतोष चौबे जी की चर्चा आज हर कहीं है, उन्हें हार्दिक बधाई। विश्व रंग में संतोष जी ने अपने बीज वक्तव्य में अनन्य का ज़िक्र किया – हम उनके आभारी हैं। ऑनलाइन पत्रिकाओं पर हुए एक सत्र में अनन्य पर चर्चा हुई। हमें नए विचार और ऊर्जा मिली, आप शीघ्र ही अनन्य में कुछ नए परिवर्तन देखेंगे।

नवंबर का महीना बाल दिवस के लिए विशेष रूप से जाना जाता है। हिंदी साहित्य में प्रारम्भिक दौर से ही बाल साहित्य का सृजन होता रहा है। अनन्य के इस अंक में बाल साहित्य पर महत्वपूर्ण कार्य करने वाले डा॰ सुरेन्द्र विक्रम का एक लेख प्रकाशित किया जा रहा है जिसमें बालसाहित्य की वर्तमान स्थिति पर विहंगम दृष्टि डाली गयी है। हिंदी के प्रसिद्ध कवियों ने कालजयी बाल गीत रचे हैं। इस माह की संपादकीय समर्पित है दुनिया भर के बच्चों के नाम।

स्टेनफर्ड यूनिवर्सिटी, अमेरिका के ऐतिहासिक रेडियो पर बाल दिवस के अवसर पर प्रांजलि सिरासाव द्वारा, बाल साहित्य पर मेरे साथ एक घंटे की बातचीत की गई, इसके लिए प्रांजलि जी का आभार...

इसे आप दिए जा रहे लिंक पर क्लिक करके सुन सकते हैं।

-जगदीश व्योम
सम्पादक- अनन्य

इस बातचीत को सुनने के लिये
इस लिंक को क्लिक करें। »

धनंजय सिंह

अरनिया खुर्द, बुलंद शहर (उ.प्र.) में जन्में सुप्रसिद्ध गीतकार डा. धनंजय सिंह वर्तमान समय में गाजियाबाद में रह रहे हैं, दो गीत-संग्रह- ‘पलाश दहके हैं’, ‘दिन क्यों बीत गये’, प्रकाशित, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के साहित्य भूषण सम्मान सहित अनेक सम्मान.

ईमेल - dhananjaysingh1945@gmail.com

धनंजय सिंह के नवगीत

1.

गमलों में उग आई नागफनी

हमने कलमें गुलाब की रोपी थीं
पर गमलों में उग आई नागफनी

जीवन ऐसे मोड़ों तक आ पहुँचा
आ जहाँ हृदय को सपने छोड़ गए
मरघट की सूनी पगडंडी तक ज्यों
कंधा दे शव को अपने छोड़ गए
सावन-भादों के मेघों के जैसा
मन भर-भर आया पीड़ा हुई घनी
हमने कलमें गुलाब की ...

आशा के सुमन महक तो जाते पर
मुस्कानों वाले भ्रम ने मार दिया
पतझर को तो बदनामी व्यर्थ मिली
हमको मादक मौसम ने मार दिया
पूजन से तो इनक़ार नहीं था पर
अपने घर की मंदिर से नहीं बनी
हमने कलमें गुलाब की रोपी थीं

रंगों-गंधों में रहा नहाता पर
अपनापन इस पर भी मजबूरी है
कीर्तन में चाहे जितना चिल्लाए
मन की ईश्वर से फिर भी दूरी है
सौगंधों में अनुबंध रहे बँधते
पर मन में कोई चुभती रही अनी
हमने कलमें गुलाब की ...

समझौतों के गुब्बारे बहुत उड़े
उड़ते ही सबकी डोरी छूट गई
विश्वास किसे क्या कहकर बहलाते
जब नींद लोरियाँ सुनकर टूट गई
सम्बंधों से हम जुड़े रहे यों ही
ज्यों जुड़ी वृक्ष से हो टूटी टहनी
हमने कलमें गुलाब की ...

2.

प्रहर,दिवस, मास,वर्ष बीते

प्रहर,दिवस, मास, वर्ष बीते
जीवन का कालकूट पीते.

पूँछें उपलब्धियाँ हुईं
खेलते हुए साँप-सीढ़ी
मंत्रित-निस्तब्ध सो गयी
युद्ध-भूमि में युयुत्सु पीढ़ी
कंधों पर ले निषंग रीते
प्रहर,दिवस, मास...

खुद ही अज्ञातवास ओढ़कर
धनञ्जय बृहन्नला हुआ
मछली फिर तेल पर टँगी है
धनुष पड़ा किंतु अनछुआ
कौन इस स्वयंवर को जीते
प्रहर,दिवस, मास...

जाने कैसा निदाघ तपता है
आग भर गयी श्यामल घन में
दावानल कौन बो गया
चीड़-शाल-देवदारु-वन में
अकुलाये सिंह-व्याघ्र-चीते
प्रहर,दिवस, मास...

3.

जंगल उग आये

भाव-विहग उड़ इधर-उधर
दु:ख-दाने चुग आये
मन पर घनी वनस्पतियों के
जंगल उग आये.

चीते-जैसी घात लगाए
कई कुटिलताएँ
मुग्ध हिरन की आँखों का
संवेदन समझाएँ
किस-किस बियाबान के कर्ज़े
जीवन भुगताये
मन पर घनी...

हरे ताल की छाती पर
आ बैठी जलकुम्भी
और किनारे पर कँटिया ले
बैठे हो तुम भी
एक-एक पीड़ा के बाँटे
कितने युग आये.
मन पर घनी...

4.

दिन क्यों बीत गये

कौन,किसे,क्या समझा पाया
लिख-लिख गीत नये
दिन क्यों बीत गये?

चौबारे पर दीपक धरकर बैठ गयी संध्या
एक-एक कर तारे डूबे
रात रही बंध्या
यों स्वर्णाभ किरण मंगल घट
तट पर रीत गये
दिन क्यों बीत गये...

छप-छप करती नाव हो गयी
बालू का कछुआ
दूर किनारे पर जा बैठा
बंसीधर मछुआ
फिर मछली के मन पर काँटे
क्या-क्या चीत गये.
दिन क्यों बीत गये...

...

5.

ज्यों जहाज का पंछी

यों तेरी यादों के बादल
मन पर घिर आये
ज्यों डूबे जहाज का पंछी
जल पर मँडराये.

एक-एक स्मृति में सौ-सौ
छवियों का मेला
शांत झील में जैसे कोई
फेंक गया ढेला
इंद्रधनुष के रंग न जाने
कैसे तिर आये
यों तेरी यादों के बादल...

कोहरे भरी रात में जैसे
सूर्य-किरण चमके
गूँज उठे सन्नाटे में
शहनाई थम-थम के
बार-बार यों देख रहा मन
सपने मनभाये
यों तेरी यादों के बादल...

-धनंजय सिंह

गोवर्धन यादव

मुलताई (जिला बैतूल) म.प्र. में जन्में तथा वर्तमान में छिंदवाड़ा निवासी श्री गोवर्धन यादव सुप्रसिद्ध साहित्यकार हैं, लेख, कहानी, लघुकथा एवं बाल साहित्य आदि विभिन्न विधाओं में चार पुस्तकें प्रकाशित, मध्य प्रदेश के महामना राज्यपाल द्वारा हिंदी भवन में सम्मान सहित अनेक संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत/ सम्मानित.

ईमेल - goverdhanyadav44@gmail.com

पातालकोट- धरती पर एक अजूबा

-गोवर्धन यादव

“‘पुराणों के अनुसार धरती के ऊपर सात लोक बताए गए हैं- भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक,जनलोक, तपोलोक तथा ब्रह्मलोक. इसी तरह धरती के नीचे सात लोक है. यथा- अतल, वितल, सतल, रसातल, तलातल, महातल और सबसे अंतिम लोक “पाताल लोक” है....”

‘‘इस धरती के नीचे एक ऐसी मानव बस्ती है, जहाँ के आदिवासी जन हजारों-हजार साल से अपनी आदिम संस्कृति और रीति-रिवाजों को लेकर जी रह रहे हैं, जहाँ चारों ओर बीहड़ जंगल हैं, आवागमन के कोई साधन नहीं हैं, विषैले जीव जन्तु, हिंसक पशु खुले रूप में विचरण करते हैं, दोपहर होने पर ही सूरज की किरणें अन्दर झाँक पाती हैं, जहाँ हमेशा धुंध-सी छाई रहती है, चारा चरती हुई भैंसों को देखने पर ऐसा प्रतीत है, जैसे कोई काला सा धब्बा चल-फ़िर रहा है. सच मानिए ऐसी जगह पर मानव-बस्ती का होना, एक आश्चर्य ही लगता है.

जी हाँ, भारत का हृदय कहलाने वाले मध्यप्रदेश के छिन्दवाड़ा जिले से 78 किमी. तथा तामिया विकास खंड से महज 23 किमी. की दूरी पर स्थित “पातालकोट” को देखकर, ऊपर लिखी सारी बातें देखी जा सकती है. समुद्र तल से 3250 फ़ीट ऊँचाई पर तथा भूतल से 3000 फ़ीट गहराई में यह कोट यानि “पातालकोट” स्थित है.

हमारे पुरा आख्यानों में “पातालकोट” का उल्लेख बार-बार आया है. ”पाताल” कहते ही हमारे मानस-पटल पर, एक दृश्य तेजी से उभरता है. लंका नरेश रावण का एक भाई, जिसे अहिरावण के नाम से जाना जाता था, के बारे में कहा जाता है कि वह पाताल में रहता था. राम-रावण युद्ध के समय वह राम और लक्ष्मण को सोता हुआ उठाकर “ पाताल लोक” ले गया था और उनकी बलि चढ़ाना चाहता था, ताकि युद्ध हमेशा-हमेशा के लिए समाप्त हो जाए. इस बात का पता जैसे ही वीर हनुमान को लगता है, वे पाताललोक जा पहुँचते हैं. दोनों के बीच भयंकर युद्ध होता है और अंत में अहिरावण मारा जाता है. उसके मारे जाने पर हनुमान राम और लक्ष्मण पुनः युद्धभूमि पर ले आते हैं.

ब्रह्मांड में भूलोक और स्वर्गलोक के जैसे ही “पाताल लोक” का भी अस्तित्व है. हिंदू महाग्रंथों और पुराणों के अनुसार ब्रह्मांड में तीन लोक हैं, जिसे “त्रैलोक” कहा जाता है. इन तीन लोकों के नाम इस प्रकार से हैं- “कृतक त्रैलोक्य”, “महर्लोक” और “अकृतक त्रैलोक्य”. कृतक त्रैलोक्य को त्रिभुवन भी कहा जाता है. इसके तीन भेद हैं- भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक. जितनी दूरी तक सूर्य और चन्द्रमा का प्रकाश जाता है “भूलोक” कहलाता है. इसके अलावा पृथ्वी और सूर्य के बीच के लोक को “भुवर्लोक” कहते हैं. यह सभी ग्रहों और नक्षत्रों का क्षेत्र है. तीसरा “स्वर्लोक” इसे स्वर्गलोक भी कहा जाता है. यह सूर्य और ध्रुव के बीच का भाग है, जिनके बीच चौदह लाख योजन की दूरी का अंतर है. इसी में सप्तर्षि मंडल आता है.

(योजन- सूर्य सिद्धांत के अनुसार एक योजन में आठ कि.मी. होता है. एक खगोलविद के अनुसार एक योजन को लगभग 12 कि.मी. के आसपास बताया गया है.)

पुराणों के अनुसार धरती के ऊपर सात लोक बताए गए हैं- भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक,जनलोक, तपोलोक तथा ब्रह्मलोक. इसी तरह धरती के नीचे सात लोक है. यथा- अतल, वितल, सतल, रसातल, तलातल, महातल और सबसे अंतिम लोक “पाताल लोक” है.

दंत कथाओं के अनुसार यह वही” पातालकोट” है, जहाँ सीता माता धरती में समा गईं थीं. कुछ लोगों का मानना है जब अहिरावण भगवान श्रीराम और लक्ष्मण को सोते में से उठाकर पाताल ले गया था, तो प्रभु श्रीराम के अनन्य सेवक हनुमानजी उन्हें बचाने के लिए पाताल तक गए थे. इसी वजह से इसके बारे में कहा जाता है कि यह “पाताल लोक” जाने का दरवाजा है.

पातालकोट के बारे में सबसे लोकप्रिय प्रसंग भगवान विष्णु के अवतार वामन और राजा बलि का माना जाता है. बलि ही “पाताल लोक” के राजा माने जाते हैं.

हिंदू पौराणिक कथाओं के अनुसार, पाताल लोक राक्षस और नागों का घर है. लेकिन मध्यप्रदेश के छिन्दवाड़ा जिले में स्थित “ पातालकोट “ की अनोखी बात यह है कि यहाँ इंसान रहते हैं. पातालकोट की हरी-भरी पहाड़ियों में बारह गाँव- रातेड, चमटीपुर, गुंजाडोंगरी, सहरा, पचगोल, हरकिछार, सूखाभांड, घुरनीमालनी, झिरनपलानी, गैलडुब्बा, घटलिंग, गुढीछातरी तथा घाना गाँव हैं. एक गाँव में 4-5 अथवा सात-आठ से अधिक घर नहीं होते. एक खोज के अनुसार पातालकोट की तलहटी में 20 गाँव साँस लेते थे, लेकिन प्राकृतिक प्रकोप के चलते अब ये बारह गाँव (ऊपर नामों का उल्लेख किया गया है) ही शेष बचे हैं. सभी गाँवों के नाम संस्कृति से जुड़े-बसे हैं. भारियाओं के शब्दकोश में इनके अर्थ धरातलीय संरचना, सामाजिक प्रतिष्ठा, उत्पादन विशिष्टता इत्यादि को अपनी संपूर्णता में समेटे हुए है. तीन हजार फीट नीचे बसे यहाँ के तीन गाँव ऐसे भी हैं जहाँ सूर्य की किरणें भी नहीं पहुँच पाती हैं. जब सूर्य आकाश के मध्य में होता है, तभी सूर्य की किरणें इन गाँवों में पहुँचती है. बाकी समय यहाँ धुंध पसरी रहती है.

तीन हजार मीटर नीचे बसे पातालकोट का अंतःक्षेत्र शिखरों और वादियों से आवृत है. पातालकोट में, प्रकृति के इन उपादानों ने, इसे अद्वितीय बना दिया है. दक्षिण में पर्वतीय शिखर इतने ऊँचे होते चले गए हैं कि इनकी ऊँचाई उत्तर-पश्चिम में फ़ैलकर इसकी सीमा बन जाती है. दूसरी ओर घाटियाँ इतनी नीची होती चली गई हैं कि उसमें झाँककर देखना भी मुश्किल होता है. यहाँ का अद्भुत नजारा देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो शिखरों और वादियों के बीच होड़ सी लग गई हो. कौन कितने गौरव के साथ ऊँचा हो जाता है और कौन कितनी विनम्रता के साथ झुकता चला जाता है. इस बात के साक्षी हैं यहाँ पर उगे पेड़-पौधे,जो तलहटियों के गर्भ से, शिखरों की फुनगियों तक बिना किसी भेदभाव के फ़ैले हुए हैं.

> “यहाँ की ज्यादातर चट्टाने आर्कियन युग की है, जो लगभग 2500 मिलियन वर्ष है और गोंडवाना तलछट के साथ क्वार्ट्ज समेकित बलुआ पत्थर, शैलियाँ और कार्बोनेशियास शैलियाँ शामिल हैं. शिलाजीत नामक चट्टानों पर समग्र कार्बन ऊपरी क्षेत्रों में कुछ पैच पर पाया जाता है.“

यहाँ की ज्यादातर चट्टाने आर्कियन युग की है, जो लगभग 2500 मिलियन वर्ष है और गोंडवाना तलछट के साथ क्वार्ट्ज समेकित बलुआ पत्थर, शैलियाँ और कार्बोनेशियास शैलियाँ शामिल हैं. शिलाजीत नामक चट्टानों पर समग्र कार्बन ऊपरी क्षेत्रों में कुछ पैच पर पाया जाता है.

शब्दकोश में “कोट” के भी कई अर्थ मिलते हैं, जैसे- दुर्ग, गढ़ , प्राचीर, रंगमहल और अंग्रेजी ढँग का एक लिबास जिसे हम “कोट” कहते है. यहाँ कोट का अर्थ है- चट्टानी दीवारें , दीवारें भी इतनी ऊँची कि आदमी का दर्प चूर-चूर हो जाए. कोट का एक अर्थ होता है- कनात. यदि आप पहाड़ी की तलहटी में खड़े हैं, तो लगता है जैसे कनातों से घिर गए हैं. कनात की मुंडेर पर उगे पेड़-पौधे, हवा में हिचकोले खाती डालियाँ, हाथ हिला-हिला कर कहती हैं कि हम कितने ऊपर है. यह कनात कहीं-कहीं एक हजार दो सौ फीट, कहीं एक हजार सात सौ पचास फ़ीट, तो कहीं खाइयों के अंतःस्थल

से तीन हजार सात सौ फीट ऊँची है. उत्तर-पूर्व में बहती नदी की ओर यह कनात नीची होती चली जाती है. कभी-कभी तो यह गाय के खुर की आकृति में दिखाई देता है.

पातालकोट की झुकी हुई चट्टानों से निरन्तर पानी का रिसाव होता रहता है. पानी रिसता हुआ ऊँचें-ऊँचे आम के वृक्षों के माथे पर टपकता है और फिर छितरते हुए बूँदों के रूप में खोह के आँगन में गिरता रहता है. बारहमासी बरसात में भीगकर तन और मन पुलकित हो उठते हैं

आदिवासियों के प्रमुख देवों में, देवों के देव महादेव, इनके आराध्य देव हैं. इनके अलावा और भी कई देव हैं जैसे-मढ़ुआदेव, हरदुललाला, पनघर, ग्रामदेवी, खेड़ापति, भैंसासर, चंडीमाई, खेड़ामाई, घुरलापाट, भीमसेनी, जोगनी, बाघदेवी, मेठोदेवी आदि. इन्हें पूजते हुए आदिवासी अपनी आस्था की लौ जलाए रखते हैं, वहीं अपनी आदिम संस्कृति, परम्पराओं ,रीति-रिवाजों, तीज-त्योहारों में गहरी आस्था लिए, शान से अपना जीवन यापन करते हैं. ऐसा नहीं है कि यहाँ अभाव नहीं है. अभाव ही अभाव है, लेकिन वे अपना रोना लेकर किसी के पास नहीं जाते और न ही किसी से शिकवा-शिकायत ही करते हैं. बित्ते भर पेट के गढ्ढे को भरने के लिए वनोपज ही इनका मुख्य आधार होता है. पारंपरिक खेती करके ये कोदों, कुटकी, बाजरा आदि उगा लेते हैं. महुआ इनका प्रिय भोजन है. महुआ के सीजन में ये उसे बीनकर सुखाकर रख लेते हैं और इसकी बनी रोटी बड़े चाव से खाते हैं. महुआ से बनी शराब इन्हें जंगल में टिके रहने का जज्बा बनाए रखती है. यदि बीमार पड़ गए तो भुमका-पड़िहार ही इनका डाक्टर होता है. यदि कोई बाहरी बाधा है तो गंडा-ताबीज बाँध कर इलाज हो जाता है.

पातालकोट में विभिन्न प्रकार की बेहतरीन जड़ी-बूटियाँ पायी जाती हैं. जिससे कई प्रकार की जानलेवा बीमारियों का आसानी से इलाज होता है. यदि “पातालकोट” को जड़ी-बूटियों का विशाल भण्डार अथवा खजाना कहा जाए, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी. यहाँ के स्थानीय लोग इन्हीं जड़ी-बूटियों का ही प्रयोग करते हैं.

यहाँ के आदिवासी शहरी चकाचौंध से कोसों दूर आज भी सादगी के साथ जीवन यापन करते हैं. कमर के इर्द-गिर्द कपड़ा लपेटे, सिर पर फड़िया बाँधे, हाथ में कुल्हाड़ी अथवा दराँती लिए. होठों पर मंद-मंद मुस्कान ओढ़े ये आज भी देखे जा सकते हैं. इस क्षेत्र के विकास के नाम पर करोड़ों-अरबों रुपयों का खर्च किया गया. यह रकम कहाँ से आकर, कहाँ चली जाती है, इन्हें पता नहीं चल पाता. कितनी ही दिक्कतें अथवा परेशानी आएँ, यहाँ के आदिवासी कभी भी किसी के पास शिकायत-शिकवा लेकर नहीं

जाते. वनोपज ही इनके जीवन का आधार स्तंभ है. “कोट” में उतरने के लिए सीढ़ियाँ बना दी गयी हैं, लेकिन आज भी ये इसका उपयोग न करते हुए, अपने बने-बनाए रास्तों / पगडंडियों पर चलते नजर आते हैं. सीढ़ियों पर चलते हुए आप थोड़ी दूर ही जा पाएंगे, तब तक ये अपने तरीके से चलते हुए सैकड़ों फ़ीट नीचे उतर जाते हैं. हाट-बाजार के दिन ही ये ऊपर आते हैं और इकट्ठा किया गया वनोपज बेचकर, मिट्टी का तेल तथा नमक आदि लेना नहीं भूलते, यही उनकी न्यूनतम आवश्यकता है. (मिटी का तेल तथा नमक ये दोनों चीजें जंगल में पैदा नहीं होतीं).

ये आदिवासीजन अपने रहने के लिए मिट्टी तथा घास-फ़ूस की झोपडियाँ बनाते है. दीवारों पर खड़िया तथा गेरु से प्रतीक चिह्न उकेरे जाते हैं, हँसिया-कुल्हाडी तथा लाठी इनके पारंपरिक औजार है. ये मिट्टी के बर्तनों का ही उपयोग करते हैं. ये अपनी धरती को माँ का दर्जा देते हैं. अतः उसके सीने में हल नहीं चलाते. बीजों को छिड़क कर ही फ़सल उगाई जाती है. लेकिन अब बदले हुए परिवेश में जमीन जोतने के (खेती लायक बनाना) लिए हल-बक्खर को भी प्रयोग में लाने लगे हैं. वनोपज ही उनके जीवन का मुख्य आधार होता है..

पातालकोट में उतरने के और चढ़ने के लिए कई रास्ते हैं. रातेड़-चिमटीपुर और कारेआम के रास्ते ठीक हैं. रातेड़ का मार्ग सबसे सरलतम मार्ग है, जहाँ आसानी से पहुँचा जा सकता है. फ़िर भी सँभलकर चलना होता है. जरा-सी भी लापरवाही किसी बड़ी दुर्घटना को आमंत्रित कर सकती है.

पातालकोट के दर्शनीय स्थलों में, रातेड, कारेआम, चिमटीपुर, दूधी तथा गायनी नदी का उद्गम स्थल और राजाखोह प्रमुख है. आम के झुरमुट, पर्यटकों का मन मोह लेती है. आम के झुरमुट में शोर मचाता- कलकल के स्वर निनादित कर बहता सुन्दर सा झरना, कारेआम का खास आकर्षण है. रातेड़ के ऊपरी हिस्से से कारेआम को देखने पर यह ऊँट की कूबड-सा दिखाई देता है. “राजाखोह” पातालकोट का सबसे आकर्षक और दर्शनीय स्थल है. विशाल कटोरे के मानिंद, एक विशाल चट्टान के नीचे 100 फ़ीट लंबी तथा 25 फ़ीट चौड़ी कोत (गुफ़ा) है, जिसमें कम से कम दो सौ लोग आराम से बैठ सकते हैं.

विशाल कोटरनुमा चट्टानें, बड़े-बड़े आम-बरगद के पेडों, जंगली लताओं तथा जड़ी-बूटियों से यह ढँकी हुई है. कल-कल के स्वर निनादित कर बहते झरनें, गायनी नदी का बहता निर्मल जल , पक्षियों की चहचहाट, हर्रा-बहेड़ा-आँवला, आचार-ककई एवं छायादार तथा फ़लदार वृक्षों की सघनता, धुंध और हरीतिमा के बीच धूप-छाँव की आँख मिचौनी, “राजाखोह” की सुंदरता में चार चाँद लगा देती है, जो उसे एक पर्यटन स्थल विशेष का दर्जा दिलाती हैं.

नागपुर के राजा रघुजी ने अँगरेजों की दमनकारी नीतियों से तंग आकर मोर्चा खोल दिया था, लेकिन विपरीत परिस्थितियाँ देखकर, उन्होंने इस गुफ़ा को अपनी शरण-स्थली बनाया था. तभी से इस खोह का नाम “राजाखोह” पड़ा. राजाखोह के समीप गायनी नदी अपने पूरे वेग के साथ चट्टानों को काटती हुई बहती है. नदी के शीतल तथा निर्मल जल में स्नान कर व तैरकर सैलानी अपनी थकन भूल जाते हैं.

पातालकोट का जलप्रवाह उत्तर से पूर्व की ओर चलता है. पतालकोट की जीवन-रेखा दूधी नदी है, जो रातेड़ नामक गाँव के दक्षिणी पहाड़ों से निकलकर घाटी में बहती हुई उत्तर दिशा की ओर प्रवाहित होती हुई पुनः पूर्व की ओर मुड़ जाती है. तहसील की सीमा से सटकर कुछ दूर तक बहने के बाद पुनः उत्तर की ओर बहने लगती है और अंत में नरसिंहपुर जिले में नर्मदा नदी में मिल जाती है.

पातालकोट का आदिम सौंदर्य जो भी एक बार देख लेता है, वह उसे जीवन पर्यंत नहीं भूल सकता. पातालकोट में रहने वाली जनजाति की मानवीय धड़कनों का अपना एक अद्भुत संसार है, जो उनकी आदिम परंपराओं, संस्कृति, रीति-रिवाज, खान-पान, नृत्य-संगीत, सामान्यजनों के क्रियाकलापों से मेल नहीं खाते. आज भी वे उसी निश्छलता, सरलता तथा सादगी में जी रहे हैं.

यहाँ प्राकृतिक दृश्यों की भरमार है. यहाँ की मिट्टी में एक जादुई खुशबू है. पेड़-पौधों के अपने निराले अंदाज है, नदी-नालों में निर्बाध उमंग है, पशु-पक्षियों मे निर्द्वंद्वता है. खेत-खलिहानों में श्रम का संगीत है. चारों

तरफ़ सुगंध ही सुगंध है. ऐसे मनभावन वातावरण में उन्हें दुःख भला क्यों कर सालेगा? कठिन से कठिन परिस्थितियाँ भी यहाँ आकर नतमस्तक हो जाती है

सूरज के प्रकाश में नहाता-पुनर्नवा होता-खिलखिलाता-मुस्कुराता- खुशी से झूमता- हवा के संग हिचकोले खाता- जंगली जानवरों की गर्जना में काँपता- कभी अनमना तो कभी झूमकर नाचता जंगल, खूबसूरत पेड़-पौधे, रंग-बिरंगे फ़ूलों से लदी-फ़दी डालियाँ, शीतलता और मंद हास बिखेरते, कलकल के गीत सुनाते आकर्षक झरने, नदी का किसी रुपसी की तरह इठलाकर, बल खाकर, मचलकर बहना देखकर भला कौन मोहित नहीं होगा ? जैसे–जैसे साँझ गहराने लगती है और अन्धकार अपने पैर फ़ैलाने लगता है, तब अन्धकार में डूबे वृक्ष किसी दैत्य की तरह नजर आने लगते हैं और वह अपने जंगलीपन पर उतर आते हैं. हिंसक पशु-पक्षी शिकार की तलाश में अपनी-अपनी माँद से निकल पड़ते हैं. सूरज की रौशनी में, कभी नीले तो कभी काले-कलूटे दिखने वाले, अनोखी छटा बिखेरते पहाड़ों की श्रृंखला, किसी विशालकाय राक्षस से कम दिखलाई नहीं पड़ते. खूबसूरत जंगल, जो अब से ठीक पहले, हमे अपने सम्मोहन में समेट रहा होता था, अब डरावना दिखलाई देने लगता है. एक अज्ञात भय मन के किसी कोने में आकर सिमट जाता है. इस बदलते परिवेश में पर्यटक, वहाँ रात गुजारने की बजाय, अपने-अपने होटलों में आकर दुबकने लगते हैं, जबकि जंगल में रहने वाली जनजाति के लोग, बेखौफ़ अपनी झोपड़ियों में रात काटते हैं. वे अपने जंगल का, जंगली जानवरों का साथ छोड़कर नही भागते. जंगल से बाहर निकलने की बात, वह सपने में भी सोच नहीं सकते.. “जीना यहाँ-मरना यहाँ” की तर्ज पर ये जनजातियाँ बड़े सुकून के साथ अलमस्त होकर अपने जंगल से खूबसूरत रिश्ते की डोर से बँधे रहते हैं.

-गोवर्धन यादव

अशोक रावत

मथुरा में जन्में तथा आगरा निवासी श्री अशोक रावत सुप्रसिद्ध ग़ज़लकार हैं, 04 ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित, ग़ज़ल संग्रह 'कोई पत्थर नहीं हैं हम' के लिए उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा 'दुष्यंत सम्मान' से सम्मानित,'साहित्य भारती' व 'शोध दिशा' के ग़ज़ल अंक तथा 'ग़ज़ल कुम्भ-2018' का संपादन, भारतीय खाद्य निगम में 'डिप्टी जनरल मैनेजर' के पद से सेवा निवृत्ति के बाद स्वतंत्र लेखन.

ईमेल - ashokdgmce@gmail.com

चार ग़ज़लें

-अशोक रावत

01.

जो नहीं मिला हमें, उसका कोई ग़म नहीं,
ज़िंदगी से जो मिला, वो भी कोई कम नहीं।

लिखना जब शुरु किया, तब से जानते हैं हम,
लफ़्ज़ काम आएँगे, क़ीमती क़लम नहीं।

कुछ न कुछ बुरा भला, तो कहा ही जाएगा,
जिस तरह के लोग हैं, उस तरह के हम नहीं।

खा ही जाए काट कर कोई भी सलाद में,
सख़्त भी नहीं मगर, इतने भी नरम नहीं।

एक बार जी के तो देखिये क़रीब से,
ख़म हैं जिंदगी में पर इतने पेचोख़म नहीं।

किस तरह से होंगे कम, दरमियान फ़ासले,
अपनी ओर से कोई, बढ़ता दो क़दम नहीं।

उनके ताश का महल, डरते हैं बिखर न जाए,
शोर कर रहे हैं जो उनमें कोई दम नहीं।

हमको कोई डर नहीं, कीजिए जो कर सकें,
हौसले से तो बड़े, आपके सितम नहीं।

02.

अगर मुमकिन हुआ होता, बुझा कर रख लिया होता,
अमीरों ने कहीं सूरज छुपा कर रख लिया होता.

अगर हम शान में राजा की ग़ज़लें लिख रहे होते,
किसी औहदे पे हम को भी सजा कर रख लिया होता.

कहीं बिकता नहीं नमकीन पानी वरना सेठों ने,
समंदर को बड़ी बोतल में ला कर रख लिया होता.

नहीं नाराज़ होते आज अपने आज ही से हम,
अगर अपने लिए भी कुछ बचा कर रख लिया होता.

अगर गायें हमारी ही तरह चालक हो जातीं,
तो अपने दूध में पानी मिला कर रख लिया होता.

ग़नीमत ही समझिए तीरगी की चल नहीं पाई,
नहीं अब तक उजालों को दबा कर रख लिया होता.

ज़रूरत पर सगे भाई हमें पैसे तो दे देते,
भले ही हमसे काग़ज़ पर लिखा कर रख लिया होता.

हमें मालूम है उसके किसी मतलब के हम होते,
तो उसने हाथ कंधे पर घुमा कर रख लिया होता.

हक़ीक़त है, कभी शायर नहीं होते, अगर हमने,
तेरा फेंका हुआ सिक्का उठा कर रख लिया होता.

03.

मेरा कुछ सामान बचा भी सकते थे,
आग लगी थी लोग बुझा भी सकते थे.

वो ही जानें उनकी क्या मजबूरी थी,
बच्चे मेरा बोझ उठा भी सकते थे.

घर से बाहर फेंक दिया सामान मेरा,
भाई थे आख़िर समझा भी सकते थे.

टूट गए दिल छोटी छोटी बातों पर,
उन बातों को लोग भुला भी सकते थे.

पीठ लगा कर क्यों बैठे हैं आँगन में,
ये दीवारें लोग गिरा भी सकते थे.

हमने सब अपनी ग़ज़लों पर छोड़ दिया,
हम अपनी पहचान बना भी सकते थे.

बीच भँवर में छोड़ गए माँझी मुझको,
मेरी कश्ती पार लगा भी सकते थे.

मैंने तो दिल से हर बार पुकारा था,
आना होता तो तुम आ भी सकते थे.

कोई रिश्तेदार नहीं था शादी में,
उनको हम इक बार मना भी सकते थे.

जाने क्यों चुप रहना ही बेहतर समझा,
तुम मेरी आवाज़ उठा भी सकते थे.

04.

वो राजा हैं रियासत के, नफ़ा नुकसान देखेंगे,
नियम क़ानून तो उनके बड़े दीवान देखेंगे.

तुम इतना बोलते क्यों हो, तुम्हारी हैसियत क्या है,
प्रजा के लोग भी राजा में क्या ईमान देखेंगे.

ज़रा दो लाइनें लिख लीं, तो हिम्मत बढ़ गई इतनी,
वज़ीरों में भी अब इंसानियत, इंसान देखेंगे.

सियासत काट देगी आदमी को आदमी से ही,
कभी सोचा नहीं था ऐसा हिंदुस्तान देखेंगे.

यही बर्ताव नदियों से अगर करते रहेंगे हम,
तो पानी की जगह निश्चित है रेगिस्तान देखेंगे.

चलो अच्छा है कोई सोचने को आसरा तो है,
जिन्हें ये आज भी लगता है सब भगवान देखेंगे.

मुनासिब तो यही है मुश्किलों से सीख लें लड़ना
कहीं फँस जाएँगे यदि रास्ता आसान देखेंगे.

समझ लेंगे कि दुनिया में कहीं ईमान बाक़ी है,
किसी बच्चे के होठों पर अगर मुस्कान देखेंगे.

मीनू खरे

लखनऊ में जन्मी और पली-बढ़ी सुश्री मीनू खरे प्रसार भारती लखनऊ की केंद्र कार्यक्रम प्रमुख हैं, लघुकथा, हाइकु, कविता आदि विधाओं में लिखती हैं, ‘खोयी कविताओं के पते’ और ‘जुगनुओं की वसीयत’ उनके दो हाइकु संग्रह प्रकाशित हैं, विज्ञान रिपोर्टिंग हेतु विज्ञान और तकनीक मंत्रालय का राष्ट्रीय पुरस्कार 2009 तथा विश्व में सर्वश्रेष्ठ बाल रेडियो कार्यक्रम हेतु यूनिसेफ़, न्यूयॉर्क से ICDB ग्लोबल पुरस्कार समेत पंद्रह राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित.

ईमेल - meenukhare@gmail.com

सीक्रेट-पार्टनर

-मीनू खरे

चाइल्ड-काउंसिलर चित्रा बेहद अपसेट थी। इसलिए नहीं कि एक दस साल की बच्ची के साथ अपने ही घर में रोज़ दरिंदगी हो रही थी, ना ही इसलिए कि शराबी बाप ही मासूम से वेश्यावृत्ति करवा रहा था। ऐसे घिनौने केस तो चित्रा पहले भी डील कर चुकी थी पर आज का केस बिल्कुल जुदा था। इस बच्ची को तो यह भी पता न था कि उसके साथ कुछ ग़लत भी हो रहा है। उसे समझाया गया था कि यही परिवार की मदद का तरीक़ा हैं। हैवानियत के कारण बिस्तर लग चुकी बच्ची दुखी थी कि बीमारी के कारण वो घर चलाने को ‘ज़रूरी मदद‘ नहीं कर पा रही। बाल शोषण के इस नये वेरिएंट ने चित्रा को अन्दर तक हिला दिया था। मन हल्का करने को वो इस समय तफ़सील से अपने क्लीनिक पार्टनर संदीप के साथ फ़ोन पर थी। “बच्ची शेल्टर होम जाने को तैयार ही नहीं थी! उसकी इच्छा जल्दी स्वस्थ होकर फिर से ‘परिवार की मदद’ करने की थी! ज़बरदस्ती शेल्टर होम ले जाते समय अपराध बोध से ग्रस्त बच्ची ने घर की दीवार पर लिखा- सॉरी पापा!” “वेरी स्ट्रेंज ऐंड सैड!” निराश भाव से संदीप बोला।

चित्रा ने कहा, “ज़्यादातर बच्चे यौन शोषण से अनजान होते हैं। आजकल लोग ऐसे बच्चों को बरग़ला कर उस ऐक्ट को जस्टिफ़ाई कर देते हैं जिसके बाद बच्चे विरोध नहीं करते और शोषण आसान हो जाता है।”

“हमें बच्चों को यौन अपराधों के बारे में बताना चाहिए।” संदीप की इस बात से चित्रा असहमत थी।

वो बोली, “इससे बच्चों की मासूमियत नहीं छिन जायेगी?”

“न बताने से शोषण का ख़तरा बढ़ता है।”

“उसके लिए अभिभावक सतर्क रहें न कि बच्चों को गन्दगी में खींचा जाय।” कह कर चित्रा ने फ़ोन रख दिया। उसकी नौ वर्षीय बेटी मून अब कमरे में आ चुकी थी।

“किसका फ़ोन था?”

“पार्टनर का।‘’

“तुम उन्हें पार्टनर क्यों कहती हो मम्मी?”

“क्यों कि वो क्लीनिक में मेरे पार्टनर हैं।”

“पापा भी तो तुम्हारे पार्टनर हैं!”

“वो मेरे लाइफ़ पार्टनर हैं।”

“मम्मी तुम्हारा सीक्रेट पार्टनर कौन है?”

“सीक्रेट पार्टनर तो कोई भी नहीं है मेरा! “

“झूठ! हर किसी का एक सीक्रेट पार्टनर ज़रूर होता है मम्मी!”

“अच्छा! ये सीक्रेट पार्टनर होता कौन है?”

“जिसके साथ आप अकेले में बिना डरे चले जाते हो। जो आपकी बॉडी में कहीं पर भी टच करे तो आप करने देते हो। आप रोते नहीं, ना ही किसी को बताते हो।”

बेहद सशंकित हो चुकी चित्रा ने पूछा; क्या तुम्हारा भी कोई सीक्रेट पार्टनर है मून?”

“वो तो सबका होता है!”

चित्रा धैर्य खो रही थी;

“कौन है तुम्हारा सीक्रेट पार्टनर मून ?”

“सीक्रेट पार्टनर का नाम सीक्रेट रखते हैं नहीं तो मम्मी पापा की डेथ हो जाती है!” मून ने समझाते हुए कहा। ■

क्लीन-बोल्ड

तमाम परेशानियों के बावजूद पूजा अपना सरकारी बंगला छोड़ ससुराल में रह रही थी. एक वर्किंग मदर के लिए अकेले बच्चों को पालना किसी परीक्षा से कम नहीं होता है. पूजा का ऑफिस जाना, उसकी ढाई साल की बेटी कुहू के लिए असहनीय था. ऑफिस जाते समय रोज़ कुहू का फूट-फूट के रोना पूजा को सारे दिन रुलाता. अजब सा अपराधबोध उसे घेर लेता. वो क्या करे! तंग आकर पूजा तंग गलियों में बसे ससुराल के घर में कुहू को लेकर रहने आ गयी. यहाँ दादी-बाबा, चाचा-चाची, बुआ और भाई-बहनों संग कुहू बहल गयी. वो खेलती रहती और पूजा इतने चुपके से ऑफिस को निकलती कि कुहू जान ही न पाती. दिन में कभी कुहू माँ को पूछती तो कोई बहाना बना दिया जाता कि मम्मा दवाई लेने गयी है, अभी आ जाएगी. समस्या लगभग हल हो चुकी थी. पूजा को अपने दिमाग़ पर गर्व हुआ. एक दिन पूजा की छुट्टी थी. टी.वी पर क्रिकेट मैच आ रहा था. क्रिकेट की दीवानी पूजा, कुहू को गोद में लेकर मैच देखने बैठ गयी. वो मैच देख रही थी और कुहू दीवार पर टँगा कैलेंडर, जिस पर घोंसले में चिड़िया के बच्चों का चित्र था.

पूजा ने पूछ लिया, कैलेंडर में क्या बना है कुहू?

“चिया के छोते बच्चे हैं मम्मा”

“चिया के बच्चे का कल लहे हैं कुहू?”

“चिया के बच्चे लो लहे हैं मम्मा.”

“अले! लो क्यों लहे हैं चिया के बच्चे?”

“इनकी मम्मा इन्हें छोल के चुपके से ऑफिस चली गयी है इछलिए लो लहे हैं बिचाले.”

मैच में बैट्समैन क्लीन-बोल्ड हुआ.

पूजा को लगा बैट्समैन नही बल्कि वो ख़ुद क्लीन-बोल्ड हुई.

-मीनू खरे ■

रचना श्रीवास्तव

लखनऊ(भारत) में जन्मी तथा कैलिफोर्निया, अमेरिका निवासी रचना श्रीवास्तव की कविता, हाइकु, लघुकथा आदि विधाओं में अब तक पाँच पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, समाज सेवा के लिए अमेरिका के राष्ट्रपति श्री जो बाइडन जी के द्वारा प्रमाणपत्र.

ईमेल - rach_anvi@yahoo.com

दो कविताएँ

-रचना श्रीवास्तव

1. इन्द्रधनुष

चिंता की जैकेट में
मुरझाये से हो तुम!
सोचती हूँ
एक मुट्ठी बादल
तुम्हारी जेब में भर दूँ
ताकि सूखे मन को
थोड़ी आर्द्रता मिल सके
आकाश खींचकर
तुम्हें उढ़ा दूँ
कि जलती उम्मीदों को
मिल सके साया
बहारों का वंदनवार
सजा दूँ तुम्हारे माथे
कि खिल उठें
पतझर हुई साँसें
दर्द की गठरी
उतार दो मेरे आँगन
और
ख़ुशी के रंगों को
उड़ने दो अपने आस-पास
क्योंकि तुम हो इन्द्रधनुष
'हमारे' घर के
'हमारी' खुशियों के
...

2. विधवा नदी

शहर की चौखट पर
बहती थी
वह नदी
जिसमें गिर कर
सूरज बुझता
और चाँद
मुँह धोकर सँवर जाता
खुश्क हवाएँ
छूकर इसको

नम हो जातीं
संध्या के अरुण श्रृंगार से
नदी की लहरें
सुहागिन बन
इतराती भाग्य पर
पानी के इस दर्पण में
प्रतिबिम्बित होते
शहर के घर
और नदी भर जाती
जुगनुओं से
इसी शहर ने,
खींचीं नदी तक
जलती रेखाएँ
गंदगी घरों से निकल
तट पर उछलने लगी
बेबाक बहती
इठलाती लहरों में
पड़ गयीं काली गाँठें
नदी के सीने में
गाड़ दी गईं बल्लियाँ
और बस गयीं
कुछ बेनाम बस्तियाँ
अब सूरज
बिना मिले चला जाता
चाँद भी
नहीं उतरता नदी में
जुगनुओं ने
इधर से गुजरना छोड़ दिया
धीरे-धीरे छीजते गये किनारे
तब बहुत रोई थी नदी
कल-कल करती
उसकी समृद्ध आवाज़
बंजर हो गई
बहती है अब भी
एक कृशकाय विधवा नदी
जो बन चुकी है
स्वयं ही प्यास

....

-रचना श्रीवास्तव

डा. सुरेन्द्र विक्रम

डॉ. सुरेन्द्र विक्रम विगत चालीस वर्षों से बालसाहित्य सृजन कर रहे हैं, अब तक 24 पुस्तकें प्रकाशित, एनसीईआरटी सहित विभिन्न राज्यों की हिन्दी की पाठ्यपुस्तकों में कविताएँ संकलित, विश्व हिन्दी सम्मेलन में भारत की ओर से बालसाहित्य का प्रतिनिधित्व, उ०प्र० हिन्दी संस्थान, लखनऊ से दो बार तथा अन्य लगभग 40 संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत एवं सम्मानित

ईमेल - vikram.surendra7@gmail.com

हिंदी बालसाहित्य : कुछ बिन्दु, कुछ विचार

-डा. सुरेन्द्र विक्रम

" बालसाहित्य को साहित्य ही नहीं मानने का शगल भी समाज में खूब जोरों पर है। बालसाहित्य का नाम आते ही लोगों के मुँह का स्वाद कसैला होने लगता है...."

समकालीन बालसाहित्य लेखन ने इस भ्रम को तोड़ा है कि हिंदी में बालसाहित्य का अभाव है या स्तरीय बालसाहित्य नहीं लिखा जा रहा है। आज बालसाहित्य की स्थिति में पहले के मुकाबले व्यापक बदलाव आया है। बालसाहित्य की हर विधा में अनेक रचनाकारों ने बड़े परिश्रम से मानक बनाए हैं, तथा बच्चों की रुचि के अनुकूल ढेर सारे बालसाहित्य का सृजन किया है। अब उनकी बातें जाने दीजिए जो बालसाहित्य की ओर से अपनी दोनों आँखें मूँदे हुए हैं और जिन्होंने दोनों कानों को कसकर बंद कर रखा है। ऐसे लोग न तो बालसाहित्य की प्रगति की ओर निहारना चाहते हैं और न ही उसके विकास को स्वीकार करना चाहते हैं। ऐसे लोगों का अरण्यरुदन तो पहले भी था, आज भी है और कल भी रहेगा।

आज से दो दशक पूर्व उ०प्र० सूचना एवं जनसंपर्क विभाग लखनऊ की मासिक पत्रिका के संपादकीय में कहा गया था कि-

" हिंदी के बालसाहित्य ने बच्चों की दिमागी गरीबी को बढ़ाया है, क्योंकि लेखक बच्चों को अपना प्रतिस्पर्धी न समझकर उसके जीवन में ज्ञान के निरर्थक ओले बरसाते रहते हैं। बच्चों से भी कमजोर बालसाहित्य की कभी कोई लंबी उम्र नहीं हो सकती।"

-उत्तर प्रदेश: नवंबर 1998 : पृष्ठ 3

ऐसी मानसिकता के लोगों पर ही प्रहार करते हुए हास्य-व्यंग्य के संदर्भ में हरिशंकर परसाई ने कहा था कि-

"हम सब हास्य-व्यंग्य के लेखक लिखते-लिखते मर जाएँगे, तब भी लेखकों के बेटों से इन आलोचकों के बेटे कहेंगे कि हिंदी में हास्य-व्यंग्य का अभाव है।"

-सदाचार का ताबीज़: दिल्ली 1967: पृष्ठ 7

परसाई जी की हास्य-व्यंग्य के संदर्भ में आज से पाँच दशक से पहले की गई उपर्युक्त टिप्पणी, बालसाहित्य के संदर्भ में आज भी लागू है। लोगों की इसी जड़ मानसिकता के कारण विपुल सृजन के बावजूद बालसाहित्य हाशिए पर खड़ा है। अफसोस तो तब और अधिक होता है, जब ऐसे लोगों के साथ कुछ जिम्मेदार लोग भी बिना पढ़े अपनी अज्ञानतावश बालसाहित्य पर अनर्गल टिप्पणी करने से नहीं चूकते हैं।

यह प्रश्न आज भी हमारे सामने मुँह बाए खड़ा है कि क्या बालसाहित्य सचमुच बचकाना, बेसहारा, बेबुनियाद और स्तरहीन है, या अपने बड़प्पन का चश्मा लगाकर ये तथाकथित आलोचक और गैर जिम्मेदार लोग बालसाहित्य के साथ-साथ बच्चों को भी कमजोर समझकर बहुत बड़ी भूल कर रहे हैं। वे बालसाहित्य के अस्तित्व को नकारने और बच्चों को नजरअंदाज करने में ही अपनी हेठी समझ रहे हैं। जिस बच्चे के लिए विलियम बर्ड्सबर्थ ने आज से वर्षों पूर्व कहा था कि- ***Child is the father of man***. अर्थात् बच्चा इंसान का पिता होता है। उसमें आरंभ से ही वे सारे गुण समाये रहते हैं। आज उसी बच्चे को कमज़ोर समझने की भूल करना कहाँ तक उचित है? लाख टके की बात यह हैं कि जिस समाज में बच्चों की उपेक्षा होगी, वहाँ पर बालसाहित्य की उपेक्षा होना लाजमी है।

बालसाहित्य को साहित्य ही नहीं मानने का शगल भी समाज में खूब जोरों पर है। बालसाहित्य का नाम आते ही लोगों के मुँह का स्वाद कसैला होने लगता है। बालसाहित्य का लेखक यानी अलग ही समाज का प्राणी। मज़ेदार बात यह भी है कि लोग भ्रम पाले हुए हैं कि बालसाहित्य तो कोई भी लिख सकता है।

जैसे हर सिक्के के दो पहलू होते हैं वैसे ही मेरी दृष्टि में बालसाहित्य को अत्यंत हल्के में लेने के कुछ कारण भी हैं। प्रकाशन की दृष्टि से जब हम समकालीन बालसाहित्य पर विचार विमर्श करते हैं तो पाते हैं कि प्रतिवर्ष बच्चों के लिए सैकड़ों पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। कुछ पुस्तकें प्रकाशकों द्वारा स्वेच्छा से परीक्षण के बाद छापी जाती हैं, परंतु कुछ ज़ोर आजमाइश करके/ खुले शब्दों में कहें तो पैसे देकर या एक निश्चित बिक्री का प्रलोभन देकर छपवाई जाती हैं। यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि ऐसा केवल बालसाहित्य में ही नहीं होता है, बडों के साहित्य में भी यह धंधा खूब फल-फूल रहा है।

यहाँ यह स्वीकार करने में संकोच नहीं होना चाहिए कि जो भी पुस्तकें पैसे देकर या दबाव डालकर बालसाहित्य के नाम पर खुद छापकर या छपवाकर बच्चों के लिए परोस दी जाती हैं, उनसे बालसाहित्य के नाम पर धब्बा लगने का खतरा मँडराता रहता है। आज ऐसे बहुत से लेखक हैं जो बड़ों के साहित्य में हाथ आजमाने के बाद असफल होने पर बालसाहित्य में घुसपैठ करना चाहते हैं।

जब प्रकाशकों द्वारा गुणवत्ता के आधार पर उनकी पुस्तकें नहीं प्रकाशित की जाती हैं तो वे अपने पैसों से पहले पुस्तकें छपवाते हैं, बाद में उसके बिकवाने का जुगाड़ लगाते हैं। अंत में, असली मुद्दे पर आकर पुरस्कार प्राप्त करने की जुगत भिड़ाने लगते हैं। वे बालसाहित्य के आयोजनों, समारोहों का पता लगाते रहते हैं तथा स्वयं पत्र भेजकर (अब तो मेल और व्हाट्सअप आसानी से उपलब्ध हैं) आयोजकों से बुलाने का आग्रह करते हैं। यदि सही जुगाड़ नहीं लगा तो कभी-कभी बिना बुलाए ही अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हुए मंच को हथियाने या अपना झंडा गाड़ने का प्रयास करते हैं।

ऐसे भगीरथ प्रयास करने पर भी जब उनकी दाल नहीं गलती है, तो वे बालसाहित्य को ही भला-बुरा कहने लगते हैं। यह वही लोग हैं जो जिस पत्तल में खाते हैं, उसी में छेद करते हैं। यह भी कटु सत्य है कि ऐसे ही लोगों ने बालसाहित्य का बहुत अहित किया है। कुछ ऐसे भी लोग हैं जो बालसाहित्य की फैक्ट्री हैं, जहाँ उत्पादन होना लाजिमी है। जिन्होंने अपने साथ-साथ अपनी-अपनी पत्नियों को भी बालसाहित्य के क्षेत्र में उतारकर उन्हें पुरस्कार की लाइन में खड़ा कर दिया है।

बालसाहित्य सृजन कोई आसान खेल नहीं है। इस क्षेत्र में वही लोग सफल होते हैं जो अपने अहं को आत्मसात करके बच्चों से सीधा तादात्म्य स्थापित करते हैं। बालसाहित्य सृजन के क्षेत्र में आज ऐसे भी लोग विद्यमान हैं जो अपने लेखन के आरंभिक दिनों में बालसाहित्य से ही आगे आए और अपने को बालसाहित्य का मसीहा कहलाने की भूल में बालसाहित्य पर ही फब्तियाँ कसने लगे। ऐसे लोग आत्मश्लाघा में इतना मुग्ध हो गए हैं कि अपने अतिरिक्त अन्य बालसाहित्य सृजन को भी शक की नज़रों से घूर रहे हैं।

> “बालसाहित्य सृजन कोई आसान खेल नहीं है। इस क्षेत्र में वही लोग सफल होते हैं जो अपने अहं को आत्मसात करके बच्चों से सीधा तादात्म्य स्थापित करते हैं।“

मैंने ऊपर यह बात कही थी कि हर सिक्के के दो पहलू होते हैं। यहाँ यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि आज जो भी बालसाहित्य लिखा जा रहा है, वह सब का सब श्रेष्ठ नहीं है परंतु कुछ तो ऐसा है ही जिस पर गर्व किया जा सकता है। यह स्वाभाविक प्रक्रिया है। बड़ों के लिए जो भी लिखा जा रहा है, क्या वह सभी श्रेष्ठ या उल्लेखनीय है? कदापि नहीं और ऐसा हो भी नहीं सकता है। बालसाहित्य सृजन बच्चों की ऐसी मिठाई है जिसमें स्वाद को संतुलित बनाने के लिए कई चीजों का ध्यान रखना पड़ता है।

बालसाहित्य की लंबी यात्रा में भी अनेक पड़ाव आए हैं। यह यात्रा रुक-रुककर आगे बढ़ी है, और आगे बढ़-बढ़कर हिचकोले खाती रही है। इसमें कहीं-कहीं अवरोध भी आए हैं। कुछ रचनाएँ बहुत अच्छी हैं तो कुछ महज़ खानापूर्ति करती हैं। कहीं-कहीं बालसाहित्य को बहुत हल्के में लेने के कारण यह चूक हुई है।

एक तथ्य यह भी उल्लेखनीय है कि बालसाहित्यकार और बालसाहित्य दोनों अनेक आरोहों-अवरोहों से गुजरकर धीरे-धीरे ही आगे बढ़े हैं। इसमें सच्चाई है कि बड़ों के लिए लिखने वालों ने भी बालसाहित्य लिखा है, परंतु कहीं चर्चा-परिचर्चा के अभाव में तो कहीं प्रकाशन के अभाव में लोगों का ध्यान उसकी ओर नहीं गया है।

बीसवीं शताब्दी का अंतिम दशक तथा इक्कीसवीं शताब्दी के दो दशक बालसाहित्य के लिए विशेष रूप से चुनौतीपूर्ण रहे हैं। चारों ओर से उठ रहे शोरगुल के बावजूद बालसाहित्य ने ऊँचाइयों को छुआ है। इस अवधि में नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली से चार खंडों में प्रकाशित भारतभूषण अग्रवाल रचनावली के खण्ड एक के भाग-4 में उनकी 50 बाल कविताएँ संकलित की गई हैं। हालांकि यह पहला अवसर नहीं है, इसके पूर्व राजकमल

प्रकाशन से प्रकाशित निराला रचनावली का पूरा सातवाँ खण्ड ही उनके बालसाहित्य पर केन्द्रित है। बच्चन रचनावली के नवें खण्ड में उनका बालसाहित्य संकलित किया गया है। भारतभूषण अग्रवाल रचनावली के प्रथम खण्ड की भूमिका में संपादक बिन्दु अग्रवाल लिखती हैं-"भारत जी बाल कविताओं को भी महत्त्व देते थे, इसलिए उनको भी यहाँ संकलित किया गया है।"

इस तथ्य को बहुत कम लोग जानते हैं कि सन् 1943 में प्रकाशित तारसप्तक के सुप्रसिद्ध कवि भारतभूषण अग्रवाल लगभग उसी समय लिखी गई अपनी बालकविताएँ अपने मित्रों, रिश्तेदारों और बच्चों को हाव-भाव सहित सुनाया करते थे। आगे चलकर उनकी ये बालकविताएँ 'किसने फूल खिलाए' (ओंकार प्रेस, इलाहाबाद : 1956) तथा ' मेरे खिलौने' (पराग प्रकाशन, नई दिल्ली : 1964) में प्रकाशित हुईं। उनकी भाषा-ज्ञान (बाल पाठ्यपुस्तक) : कपूर पब्लिकेशंस, दिल्ली :1964 में प्रकाशित हुई थी जो हिमाचल प्रदेश प्रशासन की कक्षा 2 के लिए लिखी गई थी।

राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली से आठ खंडों में प्रकाशित 'रामवृक्ष बेनीपुरी ग्रंथावली' का पूरा सातवाँ खंड उनके बालसाहित्य पर केंद्रित है। 'बालक' और 'चुन्नू मुन्नू' का संपादन करते हुए बेनीपुरी जी ने विपुल मात्रा में बालसाहित्य लिखा है। संपादक: सुरेश शर्मा ने उनके बिखरे हुए लगभग संपूर्ण बालसाहित्य को संकलित करके ग्रंथावली में स्थान दिया है। इससे जहाँ पाठकों को बेनीपुरी जी का संपूर्ण बालसाहित्य पढ़ने को मिलेगा, वहीं शोधार्थियों को जगह-जगह भटकना नहीं पड़ेगा। इसी प्रकार राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से छह खंडों में प्रकाशित 'रघुवीर सहाय रचनावली' (संपादक: सुरेश शर्मा) के दूसरे खंड में रघुवीर सहाय का बालसाहित्य संकलित किया गया है।

आज से 30 वर्षों पूर्व सन् 1991 में राजपाल एण्ड संस, दिल्ली से 12 खंडों में प्रकाशित अमृतलाल नागर रचनावली में उनके बालसाहित्य का कोई उल्लेख नहीं था, मगर 20 वर्षों बाद सन् 2011 में संपूर्ण बाल रचनाएँ : अमृतलाल नागर शीर्षक से पुस्तक प्रकाशित हुई। इसमें उनका संपूर्ण बालसाहित्य एक जिल्द में आ जाने से पाठकों को आसानी हो गई।

हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी ने बाल साहित्यकारों का समग्र रचना संसार छापने की पहल की थी। इस क्रम में श्रीमती शकुंतला सिरोठिया और श्रीमती संतोष साहनी का बाल संसार समग्र प्रकाशित भी हुआ था। अन्य कई बाल साहित्यकारों का समग्र प्रकाशन की योजना थी, कुछ के समग्र कंपोज भी हो गए थे तथा कुछ के चित्रों पर भी काम हो चुका था, मगर हिंदी प्रचारक संस्थान, वाराणसी के मालिक कृष्णचंद्र बेरी के निधन के कारण सारी योजना खटाई में पड़ गई।

बाल साहित्यकार द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी की रचनावली तीन खंडों में डॉ० ओम निश्चल और डा० विनोद माहेश्वरी के संपादन में प्रकाशित हुई। यह अपने आप में उपलब्धि है।

हर्ष की बात है कि इधर हिंदी बालसाहित्य को गंभीरता से लिया जा रहा है। अब आवश्यकता इस बात की है कि जो भी स्तरीय बालसाहित्य लिखा जा रहा है तथा उसके समीक्षात्मक स्तर पर गंभीर काम हो रहा है, उसे प्रकाश में लाने की आवश्यकता है। पूरे देश के विश्वविद्यालयों में बालसाहित्य और

बालसाहित्यकारों तथा बालपत्रकारिता पर 200 से अधिक शोध प्रबंधों को उपाधि प्राप्त हो चुकी है। 50 से अधिक शोधार्थी बालसाहित्य पर शोध करने के लिए विभिन्न विश्वविद्यालयों में पंजीकृत हैं। अनेक शोध प्रबंध पुस्तकाकार भी प्रकाशित हो चुके हैं।

कुल मिलाकर हिंदी बालसाहित्य का परिदृश्य सुखद है। आवश्यकता इस बात की है कि इसकी सही तस्वीर समाज में प्रस्तुत की जाए ताकि लोगों का भ्रम टूटे। आज से लगभग 25 वर्षों पूर्व उ०प्र० हिंदी संस्थान, लखनऊ के तत्कालीन कार्यकारी उपाध्यक्ष डॉ० शरणबिहारी गोस्वामी ने एक साक्षात्कार में सच ही कहा था कि-

"बालसाहित्य को साहित्य के मुकाबले स्थान देने का जब अवसर आता है, तो अच्छे पढ़े- लिखे लोग भी बालसाहित्य के महत्त्व को नकारते हैं, अथवा उसकी छोटी सीमाओं को ही स्वीकार करते हैं। बालसाहित्य को बचकाना साहित्य और उसके लेखकों को एक अवर कोटि का साहित्यकार मानने का रिवाज तो समाज में और लेखकों में भी सहज रूप से है ही। उक्त सभी धारणाएँ इसलिए हैं, क्योंकि किसी को सही तौर पर बालसाहित्य की अवधारणा मालूम ही नहीं है।"

-डा. सुरेन्द्र विक्रम

द्विजेन्द्र 'द्विज'

हिमाचल प्रदेश में जन्म, सुप्रसिद्ध ग़ज़लकार, जन-गण-मन(हिंदी),'सदियों का सारांश'(हिंदी) तथा 'ऐब पुराणा सीहृस्से दा (हिमाचली) ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित, कई संस्थानों से पुरस्कृत/ सम्मानित, पूर्व विभागाध्यक्ष, प्रयुक्त विज्ञान एवं मानविकी, राजकीय पॉलिटेक्निक, काँगड़ा.

ईमेल - dwij.ghazal@gmail.com

पाँच ग़ज़लें

-द्विजेन्द्र 'द्विज'

1.

जो लड़ें जीवन की सब संभावनाओं के ख़िलाफ़
हम हमेशा ही रहे उन भूमिकाओं के ख़िलाफ़

ज़ख़्म तू अपने दिखाएगा भला किसको यहाँ
यह सदी पत्थर-सी है संवेदनाओं के ख़िलाफ़

ठीक भी होता नहीं मर भी नहीं पाता मरीज़
कीजिए कुछ तो दवा ऐसी दवाओं के ख़िलाफ़

जो अमावस को उकेरें चाँद की तस्वीर में
थामते हैं हम क़लम उन तूलिकाओं के ख़िलाफ़

रक्तरंजित सुर्ख़ियाँ या मातमी ख़ामोशियाँ
सब गवाही दे रही हैं कुछ ख़ुदाओं के ख़िलाफ़

आख़िरी पत्ते ने बेशक चूम ली आख़िर ज़मीन
पर लड़ा वो शान से पागल हवाओं के ख़िलाफ़

'एक दिन तो मैं उड़ा ले जाऊँगी आख़िर तुम्हें'
ख़ुद हवा पैग़ाम थी काली घटाओं के ख़िलाफ़

2.

छलनी क़दम-क़दम पे है सीना पहाड़ का
दूभर किया है किसने ये जीना पहाड़ का

चमके है दूर से जो नगीना पहाड़ का
बनता है देखते ही क़रीना पहाड़ का

जिस तरह चढ़ रहे हैं वो ज़ीना पहाड़ का
लगता है बैठ जाएगा सीना पहाड़ का

भाता अगर है आपको जीना पहाड़ का
लेकर कहाँ से आएँगे सीना पहाड़ का

घाटी की प्यास और ये मीना पहाड़ का
महँगा पड़े न जाम ये पीना पहाड़ का

जो देखना है तुझको भी जीना पहाड़ का
सर्दी में आ के काट महीना पहाड़ का

ये ग़ार-ग़ार सीना ये रिसता हुआ वजूद
दामन किया है किसने ये झीना पहाड़ का

सबको पता है अब नये बनिए की आँख में
चुभता है किस क़दर ये दफ़ीना पहाड़ का

इमदाद हो कोई कि इशारा वतन का हो
आता है काम ख़ून-पसीना पहाड़ का

साज़िश कुछ इस तरह हुई यारो पहाड़ से
सड़कों से आ के सट गया सीना पहाड़ का

जो चाहते हैं आप भी जीना पहाड़ पर
मत भूलिएगा आप क़रीना पहाड़ का

3.

ज़ह्न-ओ-दिल में ये कोई डर नहीं रहने देता
शोर अन्दर का हमें घर नहीं रहने देता

कोई ख़ुद्दार बचा ले तो बचा ले वरना
पेट काँधों पे कोई सर नहीं रहने देता

आसमां तो वो दिखाता है परिंदों को नये
हाँ, मगर उनपे कोई पर नहीं रहने देता

ख़ुश्क आँखों में उमड़ आता है बादल बन कर
दर्द एहसास को बंजर नहीं रहने देता

एक पोरस भी तो रहता है हमारे अन्दर
जो सिकन्दर को सिकन्दर नहीं रहने देता

उनमें इक रेत के दरिया-सा ठहर जाता है
ख़ौफ़ आँखों में समुन्दर नहीं रहने देता

हादिसों का ये धुँधलका मेरी आँखों में ‘द्विज’
ख़ूबसूरत कोई मंज़र नहीं रहने देता

4.

समाहित कर ले तू इनमें अगर किरदार का जादू
तो फिर सर चढ़ के बोलेगा तेरे अशआर का जादू

कभी सोचा नहीं था इस तरह नींदें उड़ायेगा
हक़ीक़त का मेरे ख़्वाबों से हर इक़रार का जादू

मैं तेरे ध्यान के फूलों को अपने दिल में रखता हूँ
मेरी हस्ती में शामिल है तेरी महकार का जादू

उजड़ते गाँव के जैसी है बेहिस ज़हनियत सबकी
न अब है वार का जादू न वो त्योहार का जादू

अभी हर बात में उनकी तू हाँ में हाँ मिलाता है
परख के देख तू अपने किसी इनकार का जादू

मैं दुनिया में कई रंगों, कई बानों में फिरता हूँ
मुझे कब रोक पाया है किसी इसरार का जादू

किसानों पर ये लाठी भाँझ कर फ़स्लें उगाएगी
अभी देखा नहीं तुमने मेरी सरकार का जादू

किसी की भी नहीं सुनती वो अपनी पर जब आती है
हुकूमत पर भी चलता है मगर ज़रदार का जादू

वो घर को बेच कर अपने ख़रीदारी पे निकले हैं
चला है जिन पे तेरे पुरकशिश बाज़ार का जादू

सवाल अक्सर करेगी यह तेरी बेचेह्रगी तुझसे
ये तेरे सर का है या है तेरी दस्तार का जादू

5.

मेरे किरदार पे छाई रही मिट्टी मेरी
चाक पे धूम मचाती रही मिट्टी मेरी

कितने सपनों के उजाले थे मेरे कण-कण में
आग में तप के सुनहरी रही मिट्टी मेरी

इसकी ख़ुशबू से हर इक रास्ता उपवन-सा लगा
फूल बन-बन के महकती रही मिट्टी मेरी

मेरे होने का सबब मुझको ही मालूम न था
ग़ैर के बुत में धड़कती रही मिट्टी मेरी

ऐसी होती है तमन्ना के सराबों की चमक
दश्त-ओ-सहरा में भटकती रही मिट्टी मेरी

लोकनृत्यों की मधुर तान की सानी बनकर
मेरे पैरों में थिरकती रही मिट्टी मेरी

कुछ तो बाक़ी था मेरी मिट्टी से रिश्ता मेरा
मेरी मिट्टी को तरसती रही मिट्टी मेरी

दूर परदेस के सहरा के अँधेरों में भी
कहकशां बन के चमकती रही मिट्टी मेरी

सिर्फ़ रोज़ी के लिये दूर वतन से अपने
दर-ब-दर साथ भटकती रही मिट्टी मेरी

मैं जहाँ भी था कभी साथ न छोड़ा उसने
ज़ह्न में ऐसे महकती रही मिट्टी मेरी

-द्विजेन्द्र 'द्विज'

नीरज छिब्बर

दिल्ली में जन्मीं सामाजिक कार्यकर्ता नीरज छिब्बर एक मनोवैज्ञानिक हैं। भारतीय विद्या भवन में शिक्षक रह चुकीं छिब्बर कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिए पीआईबी, एन.एस.डी., एस.टी.सी., और ईटी. एंड टी. जैसे संस्थानों की परियोजनाओं पर काम कर रही हैं। भारतीय विरासत में दिलचस्पी रखने वाली छिब्बर पूर्वी भारत के छऊ नृत्य को बढ़ावा देने के लिए प्रयासरत हैं।

ईमेल - neerajchhiber.nc@gmail.com

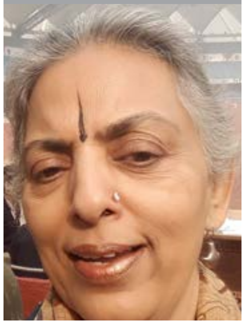

छऊ नृत्य

-नीरज छिब्बर

> “सन 1857 से 1930 तक राजनीतिक समझौते के बाद शांतिपूर्व जीवन बिताने के कारण पूरे भारत में युद्ध-कौशल कलात्मक अभिव्यक्ति में परिणत होता रहा। राजा चक्रधर सिंह के काल में छऊ नृत्य-कला का विकास हो चला था....“

जिस छऊ नृत्य ने अपने पूर्वी अंचल से निकलकर अंतरराष्ट्रीय जगत में ख्याति अर्जित की उसका आरंभ ‘फरिखंडा-नृत्य’ या खेल से हुआ है।

19वीं सदी के आरंभ में उड़ीसा राज्य के खुदा महाराज ने अपनी स्वतंत्रता क़ायम रखने के लिए जो गाँव-गाँव में किसानों की फ़ौज खड़ी कर रखी थी, वह राजनीतिक दृष्टि से तो अत्यंत महत्त्वपूर्ण है ही, इसका महत्त्व अप्रत्यक्ष रुप से छऊ नृत्य के आरंभिक स्वरुप के विकास की दृष्टि से कहीं अधिक है। शांति एवं स्थिरता के काल में यह ‘फरिखंडा’ (ढाल एवं तलवार) संचालन कलात्मक रुप लेकर लोकरुचि और मनोरंजन का साधन बन गया। विशेष अवसरों पर इस कला प्रदर्शन को उत्सव के रूप में किया जाने लगा। कलाकार राजदरबार की ओर से संपन्न होने वाले उत्सवों में भाग लेते थे। पोड़हाट

अल्काज़ी रंगपी
ALKAZI RANGP H

एवं सराईकेला स्टेट के अपेक्षाकृत शांतिमय वातावरण एवं राजाओं की कलात्मक रुचि एवं चेतना के कारण यह कला विकसित होती चली गई। इस कला के कलात्मक स्वरूप में परिवर्तन आने लगे। जनता के मनोरंजन के लिए मुखौटा-नृत्य का आरंभ हुआ।

ऐसा शिलालेख में वर्णन है कि इसी समय स्वयं सम्राट खारवल ने भी फरिखंडा नृत्य की प्रस्तुति की थी।

सन 1857 से 1930 तक राजनीतिक समझौते के बाद शांतिपूर्व जीवन बिताने के कारण पूरे भारत में युद्ध-कौशल कलात्मक अभिव्यक्ति में परिणत होता रहा। राजा चक्रधर सिंह के काल में छऊ नृत्य-कला का विकास हो चला था। यही समय था जबकि इस कला में घरान, पादचारी और हस्त-मुद्राओं का अभ्यास होने लगा। आरंभ में 'सहाड़' नामक वृक्ष की चौड़ी पत्तियों से निर्मित मुखौटे पहनकर नृत्य किया जाने लगा। कालांतर में बाँस की टोकरी को विभिन्न रंगों में रंगकर मुखौटे तैयार किए गए। इसी क्रम में लकड़ी के मुखौटे और फिर मुखौटे-निर्माण कला में निरंतर शोध होता रहा।

अखाड़ों की भूमिका भी छऊ नृत्य के विकास में महत्त्व रखती है।

जिस तरह युद्धाभ्यास कराने के लिए प्राचीन युग में सैनिक छावनियाँ होती थीं। उसी तरह मार्शल आर्ट की दीक्षा देने के लिए भी आचार्यों ने विभिन्न अखाड़ों का निर्माण करवाया था।

अखाड़ा काल में सर्वप्रथम जिसका नाम अस्तित्व में आया, वह था 'अखाड़ा खाल' (युद्ध विद्या प्रशिक्षण स्थल)।

कालांतर में नृत्याभ्यास हेतु चार अस्थायी अखाड़ों का निर्माण किया गया।

1- अमी साई अखाड़ा
2- पुरोहित साई अखाड़ा
3- कंसारी साई अखाड़ा
4- नवागढ़ अखाड़ा

इन सभी अखाड़ों के परिपोषण एवं

परिरक्षण का नेतृत्व दो उस्तादों के कंधों पर था। पहले उस्ताद थे पुरुषोत्तम रथे और दूसरे थे वासुदेव कति।

कुछ समय उपरांत आर्थिक तंगी के कारण अखाड़ों ने मिलकर एक संस्था की स्थापना की, जो थी- 'श्री कलापीठ'।

स्वयं राजा आदित्य प्रताप सिंह देव इस संस्था के अध्यक्ष रहे। राज्य सरकार तथा केंद्र सरकार का समर्थन समय-समय पर इस कला को मिलता रहा।

1975 तक का समय छऊ नृत्य शैली का स्वर्णयुग है।

इस कला को विकसित करने के लिए मार्मिक कथावस्तु का चयन, चरित्र एवं रस-भावनुकूल मुखौटा-निर्माण के कलात्मक प्रयत्न, वस्त्राभूषणों के निर्माण, नृत्यशास्त्रानुकूल अंगिक हस्त-मुद्रा एवं पादचारियों के निर्णय रसानुकूल ताल-छंद-लय आदि पर आचार्यों और अनुभवी नर्तकों जैसे राजेंद्र पटनायक, मदनमोहन महापात्र, उपेंद्र विश्वाल, वनबिहारी पटनायक, केदारनाथ साहू, ब्रजेंद्र के परम सहयोग से इस पर काम किया गया।

इस प्रयत्न में सराईकेला राजपरिवार ने परम योगदान दिया। स्वयं राजा आदित्य प्रताप सिंह देव इस नृत्य में गहरी दिलचस्पी रखते थे। कथक नर्तक उदयशंकर जी ने इस कथन से अपनी बात कही–

The trip to Saraikela still lingers thought like a fresh and beautiful dream. The performance which continued the whole night was beautiful beyond words. The show itself was magnificent and we should feel proud to think that as Indian we still have Maharajas, who devote so much of their time and interest for the course of art.

यही समय था जब छऊ नृत्य देश एवं विदेशों में जाने लगा तथा जनमानस के जीवन का हिस्सा बन गया। समय बीतने पर इसको तीन शैलियों में किया जाने लगा– सराईकेला, मयूरभज एवं पुरलिया। ये नाम जिन स्थानों से कला सिखाई गई वहीं उस शैली को प्राप्त हुए। छऊ नृत्य का वर्तमान काल नई पीढ़ी के कलाकारों का काल है। देश-विदेश से कलाकारों का जुड़ना इस कला की लोकप्रियता का प्रमाण है। समय के साथ चलने की लोच इस नृत्य में है।

भारत सरकार की तरफ़ से उड़ीसा में छऊ नृत्य के

केंद्र की स्थापना तथा सन 2010 में unesco के द्वारा इस कला को 'अमूर्त कलाओं की वैश्विक धरोहर' की सूची में शामिल किया जाना इस बात का प्रतीक है कि छऊ नृत्य लोकरुचि की कला है।

नई पीढ़ी से नारी का इस कला के साथ जुड़ना भी विचारणीय है। आज कलाकारों में उत्साह, कर्मनिष्ठता, समर्पणशीलता है। डिजिटल माध्यम से पूरा विश्व एक परिवार के समान है। कला के प्रति अपेक्षित लगन से ऐसा प्रतीत होता है कि छऊ नृत्य का भविष्य उज्ज्वल है।

सभी नाटक संस्थाओं के पाठ्यक्रम में इस कला को सम्मिलित करना युवावर्ग का आचार्यों द्वारा की जाने वाली वर्कशॉप में भाग लेना एवं विभिन्न सरकारी एवं ग़ैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा छऊ नर्तकों को सम्मान देना इस कला को नए सोपान पर ले जाएगा।

छऊ नृत्य

वो जो नृत्य के शास्त्र से अपरिचित है
वो जो काल की गहराइयों में जीवन का सृजन है
वो जो अँधेरी घाटियों में उजास की झंकार है
वो जो पक्षियों सी उड़ान भर
भावों की लचकन लिए
उन्माद से भरा मन
महारास रचता है
मुखौटे के पीछे ये छाया का उत्सव छऊ
पाँव के परिंदे ऊर्जा की सीपियाँ लिए
मौसम की धुन पर थिरकते हैं
डे ना डे ने ता
डे ना डे ने ता
हिरण की अकुलाहट बसंत की मुस्कुराहट
देह में भर कभी विलंबित कभी द्रुत लय पर
घूमता चक्रवात-सा सिखाता
कभी समर्पण का पाठ
और कभी ओजस्विता का वार भी
डे ना डे ने ता
डे ना डे ने ता
झरने के जल-सी
झरती मुद्राएँ
जैसे पक्षियों की लंबी क़तारें
घूमते अंतरिक्ष में युद्ध का बिगुल लिए
आँखों के घेरे में गाते हैं नक्षत्र
मुखौटे के पीछे
ये है छाया का उत्सव छऊ

कविता आभार– सरिता सक्सेना

-नीरज छिब्बर

बाल मन की संवेदनाएँ और बाल गीत

-डा. जगदीश व्योम

> "बाल साहित्य की कसौटी, उसकी मात्रा नहीं बल्कि उसकी गुणवत्ता है। बाल मन यह नहीं देखता कि अमुक कविता, बाल गीत या बाल कहानी किसी नामवर लेखक ने लिखी है इसलिए वह श्रेष्ठ है। वह तो उसी साहित्य को पसंद करता है जो उसके मन की संवेदनाओं को समाहित किए हुए हो। ...."

वर्तमान समय को बाल साहित्य का स्वर्ण–युग कह सकते हैं। बाल साहित्य की अनेक पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं। प्राय: सभी दैनिक समाचार पत्र भी अपने साहित्यिक परिशिष्टों में बाल साहित्य को किसी न किसी रूप में प्रकाशित करते रहते हैं। साहित्य अकादमी सहित देश की साहित्यिक संस्थाएँ बालसाहित्य को सम्मान दे रही हैं। इसके अतिरिक्त अनेकानेक छोटे–मोटे पुरस्कार भी बाल साहित्य में दिए जा रहे हैं। इन सबको देखकर यह तो कहा ही जा सकता है कि वर्तमान समय में बाल साहित्य की अनुगूँज हमारे इर्द–गिर्द सुनाई पड़ रही है।

हिंदी के प्रसिद्ध कवियों ने कालजयी बाल गीत रचे हैं, जिन्हें कई पीढ़ियों ने पढ़-पढ़कर अपना बचपन बिताया है। एक अच्छा बालगीत, बाल मन को गुदगुदाता रहता है। लेकिन यह भी सच है कि बाल साहित्य की कसौटी, उसकी मात्रा नहीं बल्कि उसकी गुणवत्ता है। बाल मन यह नहीं देखता कि अमुक कविता, बाल गीत या बाल कहानी किसी नामवर लेखक ने लिखी है इसलिए वह श्रेष्ठ है। वह तो उसी साहित्य को पसंद करता है जो उसके मन की संवेदनाओं को समाहित किए हुए हो। न जाने कितना कूड़ा–कचरा भी बाल साहित्य के नाम पर लिखा जा रहा है और छप भी रहा है, जिसे बालक आँख उठाकर देखना भी पसंद नहीं करता। और ऐसे तथाकथित बाल लेखक अपनी किताबों की संख्या बढ़ाने के अतिरिक्त मोह में बाल साहित्य के नाम पर एक प्रकार का पुस्तकीय प्रदूषण ही फैलाते रहते हैं। जब कभी कोई पत्र या पत्रिका

अच्छा बालगीत बाल-पाठकों को दे पाती है, तो बालक उसे सर-आँखों पर बिठा लेता है। ऐसे बालगीतों की प्रतिध्वनि गली-कूँचों में लम्बे समय तक सुनाई पड़ती रहती है।

हिन्दी साहित्य की न जाने कितनी बाल पत्रिकाएँ काल-कवलित हो गईं परन्तु जिन बाल पत्रिकाओं ने अच्छे बालगीत प्रकाशित किए उन बालगीतों को बाल पाठक अब तक अपने कण्ठों में बसाये हुए हैं। निश्चय ही इन बालगीतों के रचनाकारों ने बालकों के मन की संवेदनाओं को किसी न किसी रूप में इन बालगीतों में मुखरित किया है।

बया चिड़िया को घोंसला बनाते हुए देखकर बालमन उससे आत्मीयता बना लेता है। वह चाहता है कि चिड़िया हमेशा उसके पास बनी रहे। वह चिड़िया की सभी प्रकार से सहायता और सेवा करने को तैयार है। महादेवी वर्मा ने अपने बालगीत में बालमन की इसी संवेदना को वाणी दी है-

बया हमारी चिड़िया रानी
तिनके लाकर महल बनाती
ऊँची डालों पर लटकती
खेतों से फिर दाना लाती
नदियों से भर लाती पानी
बया हमारी चिड़िया रानी!
तुझको दूर न जाने देंगे
दानों से आँगन भर देंगे
और हौज में भर देंगे हम
मीठा-मीठा ठण्डा पानी
बया हमारी चिड़िया रानी...
-(महादेवी वर्मा)

कविवर श्रीधर पाठक बाल मन की अतल गहराइयों तक पहुँचने में सफल हुए हैं। प्रत्येक बालक अपने परिजनों की घर में रहकर प्रतीक्षा करता है। उसे यह आशा लगी रहती है कि उसके पापा, दादा या बाबा शाम को जब बाहर से आएँगे तो उसके लिए कुछ न कुछ जरूर लाएँगे। कोई चीज़ न लाने पर बालक अनेक प्रश्न करता है-

बाबा आज देल छे आए
चिज्जी-पिज्जी कुछ ना लाए
बाबा क्यों नहीं चिज्जी लाए
इतनी देली छे क्यों आए...
-(श्रीधर पाठक)

बालगीतों में लयात्मकता का अपना अलग ही महत्व है। बालक निरर्थक लयबद्ध शब्दों में भी गीत का पूरा आनन्द लेता है। विद्याभूषण 'विभु' ने अपने बालगीतों में लयात्मकता को विशेष महत्त्व दिया है। उनके इस बालगीत ने न जाने कितने बच्चों को हाथी के साथ घुमाया और झुमाया है-

घूम हाथी झूम हाथी
घूम हाथी झूम साथी
राजा झूमें, रानी झूमें
झूमें राजकुमार
घोड़े झूमें, फौजें झूमें
झूमें सब दरबार
हाथी घूम घूम घूम
हाथी झूम झूम झूम...
-(विद्याभूषण 'विभु')

> “बालगीतों में लयात्मकता का अपना अलग ही महत्व है। बालक निरर्थक लयबद्ध शब्दों में भी गीत का पूरा आनन्द लेता है। विद्याभूषण ‘विभु’ ने अपने बालगीतों में लयात्मकता को विशेष महत्त्व दिया है।“

घर–परिवार में बड़े–बूढ़ों से बच्चों का लगाव रहता है और उनकी अनेक चीजें बच्चों की जिज्ञासा का विषय बनी रहती हैं। दादी, नानी के पुराने सन्दूकों में दुनिया भर की चीजें भरी रहती है। बच्चे इस ताक में रहते हैं कि कब उन्हें मौका मिले और वे झाँक कर देख लें कि बक्से में आखिर क्या–क्या चीजें भरी है। बाल मन की जिज्ञासा को ‘श्री नाथ सिंह’ ने अपने एक बालगीत में व्यक्त किया है–

नानी का सन्दूक निराला
हुआ धुएँ से बेहद काला
पीछे से वह खुल जाता है
आगे लटका रहता ताला
चन्दन चौकी देखी उसमें
सूखी लौकी देखी उसमें
बाली जौ की देखी उसमें
खाली जगहों में है जाला
नानी का सन्दूक निराला...
–(श्रीनाथ सिंह)

बाल मन के पास कल्पना की जैसी लम्बी डोर होती है वैसी अन्यत्र देखने को नहीं मिलती। अतिशयोक्ति पूर्ण बातों को लयात्मकता के साथ कहकर बाल पाठक खूब आनन्द लेता है। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने बाल मन की संवेदना को पहचान कर अपना सफल एवं लोकप्रिय बालगीत हिन्दी बाल साहित्य को समर्पित किया–

आई एक छींक नन्दू को
एक बार वह इतना छींका
इतना छींका इतना छींका
सब पत्ते झर गए पेड़ के
धोखा उन्हें हुआ आँधी का...
–(राम नरेश त्रिपाठी)

तुकान्त और लयात्मक शब्दों को लेकर कल्पना की ऊँची उड़ान भरते हुए बालगीत भी बाल मन को अपने साथ यात्रा कराने में सफल होते रहे हैं। कविवर सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का यह बालगीत न जाने कितने बाल पाठकों को आज भी गुदगुदाता रहता है–

इब्न बतूता पहन के जूता
निकल पड़े तूफान में
थोड़ी हवा नाक में घुस गई
थोड़ी घुस गई कान में
कभी नाक को कभी कान को
मलते इब्नबतूता
इसी बीच में निकल पड़ा
उनके पैरों का जूता
उड़ते–उड़ते उनका जूता
जा पहुँचा जापान में
इब्नबतूता खड़े रह गये
मोची की दुकान में...
–(सर्वेश्वर दयाल सक्सेना)

बालमन पशु–पक्षियों एवं प्रकृति के साथ खेलना चाहता है, उनसे बातें करना चाहता है। बालक का कल्पनाशील मन चन्द्रमा और उसकी माँ के साथ हुई बातचीत को सहज रूप से स्वीकार लेता है एवं उसमें आनन्द लेता है। रामधारी सिंह दिनकर जी का यह बालगीत आज भी बच्चों की सहज अभिव्यक्ति बना हुआ है–

हठ कर बैठा चाँद एक दिन
माता से यों बोला
सिलवा दो माँ मुझे ऊन का
मोटा एक झिंगोला
सन–सन करती हवा
रात भर जाड़े से मरता हूँ
ठिठुर–ठिठुर कर किसी तरह
यात्रा पूरी करता हूँ...
–(रामधारी सिंह दिनकर)

निरंकार देव सेवक के इस बालगीत की यह चंचल तितली न जाने कितने बच्चों को अपने पीछे-पीछे कब से दौड़ा रही है-

दूर देश से आई तितली
चंचल पंख हिलाती
फूल-फूल पर
कली-कली पर
इतराती-इठलाती
यह सुन्दर फूलों की रानी
धुन की मस्त दीवानी
हरे-भरे उपवन में आई
करने को मनमानी
कितने सुन्दर पर हैं इसके
जगमग रंग-रंगीले
लाल, हरे, बैंजनी, वसन्ती
काले, नीले, पीले...
–(निरंकार देव सेवक)

बालक का अधिक समय कल्पना में बीतता है। वह राजा बनने की कल्पनाएँ प्रायः करता रहता है। द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी जी ने अपने बालगीतों में बाल मन को रिझाने के लिए उन्हीं की बात कही है–

यदि होता किन्नर नरेश मैं
राजमहल में रहता
सोने का सिंहासन होता
सिर पर मुकुट चमकता...
–(द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी)

छोटे भाई-बहन खेल-खेल में आपस में खूब झगड़ा करते हैं और एक-दूसरे की शिकायत भी खूब करते हैं। प्रकाश मनु का यह बालगीत कितना प्रासंगिक है। ऐसे झगड़े और ऐसी शिकायतें किस घर में नहीं होती हैं-

पापा, तंग करता है भैया
कार तोड़ दी इसने मेरी
फेंक दिए दो पहिए दूर
हार्न टूट कर अलग पड़ा है
बत्ती भी है चकनाचूर
कहता-पापा से मत कहना
ले लो मुझसे एक रुपैया
पापा, तंग करता है भैया
लकड़ी का था मेरा हाथी
इसने दोनों कान उखाड़े

हिरन बनाए थे मैंने दो
कापी से वो पन्ने फाड़े
तोड़ फोड़ डाली, पापाजी
मेले से लाई थी गैया
पापा, तंग करता है भैया...
-(प्रकाश मनु)

लोक मुहावरों एवं लोक शब्दावली से तराश कर रचे जाने वाले बालगीत भी बालमन की संवेदनाओं का स्पर्श करने में सफल रहे हैं। कृष्ण शलभ जी ने ऐसे ही कुछ सफल बालगीतों की रचना की है–

दिखा अँगूठा बोला मुन्ना
टि लि लि लि झर्र
पकड़ सको तो पकड़ो
मेरे लगे हवा के पर
मँझली काकी कितने पाके
देखें आम तुम्हारे
मिट्ठू को मत दिखला देना
खा जाएगा सारे
वो देखो–- वो चिड़ी, चिड़े के
ले गई कान कतर...
–(कृष्ण शलभ)

बाल मन सबसे अधिक संवेदनशील होता है परन्तु बालक को बालक समझकर प्राय: उसकी उपेक्षा कर दी जाती है। बालक जब शोर मचाता है या शरारत करता है तो बड़े खीझते हैं, परन्तु बालक ऐसा व्यवहार तब करता है जब उसकी उपेक्षा की जाती है, उसकी जिज्ञासा की पूर्ति नहीं हो पाती है। दामोदर अग्रवाल ने बालमन के इस संवेदनशील पहलू को पहचान कर अपने बालगीतों में बालक से कहलवाया है–

दिन में कभी रसोई घर से फुर्सत पाकर
बैठा करो अगर तुम पास हमारे आकर
तो क्यों उतना शोर मचाऊँ बोलो मम्मी...
–(दामोदर अग्रवाल)

बाल मन की संवेदनाओं को जिन बालगीतों में उचित ढँग से परख कर रखा गया है उन बालगीतों को बाल पाठकों ने बड़ी सहजता से स्वीकार कर लिया और जिन बालगीतों में बाल गीतकार बाल मानस को परखने में चूक गए उन्हें बाल पाठकों ने प्रथम दृष्टया अस्वीकार कर दिया।

आज आवश्यकता इस बात की है कि बाल साहित्य की संरचना में बालक केन्द्र में रहे। परन्तु आज के अधिकांश तथाकथित बाल साहित्यकार अपनी बाल रचनाओं के केन्द्र से बालक को धकियाकर स्वयं आने का प्रयास करते रहते हैं। यह रचनाकारों की आत्मघाती भूल है। यही कारण है कि सैकड़ों की संख्या में छप रहे बालगीतों में से कभी–कभी ही कोई बालगीत बालमन की संवेदना का संवाहक बनकर सामने आ पाता है। यदि कोई कवि अपने पूरे जीवन भर में एक–दो श्रेष्ठ बालगीतों की रचना भी कर सके, तो यह उपलब्धि एक जीवन के लिए कम नहीं कही जा सकती।

-डा. जगदीश व्योम

रंजना गुप्ता

बहराइच (उ.प्र.) में जन्मी और वर्तमान में लखनऊ निवासी डा. रंजना गुप्ता सुप्रसिद्ध नवगीतकार हैं, नवगीत, कहानी, कविता एवं अन्य विधाओं में अब तक उनकी छह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, देश की अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित एवं पुरस्कृत.

ईमेल -ranjanaguptadr@gmail.com

रंजना गुप्ता के दो नवगीत

1. दीप तुम कुछ देर ठहरो

दृष्टि धुँधली हो गयी फिर
दीप तुम कुछ देर ठहरो...

मन-हिरन घबरा रहा है
पाँव कँपते बीहड़ों में
वेदना संवेदना बन
बँट गयी क्यों?
दो धड़ों में...
शब्द गूँगे हो गये अब
मौन से क्रंदन भरो
दीप तुम कुछ देर...

दूर तक फैले हुए नभ ने
न कुछ ढाढ़स दिलाया
आँख का तिनका
समझ कर
राह से तुमने हटाया
ज़िद के निचले पायदानों
पर फिसलने से डरो
दीप तुम कुछ देर...

अनकहे संवाद कितने
हो गये गोठिल सभी
प्रीत के वातास झरते
हो गये बोझिल अभी
है बहुत गहरा कुहासा
रश्मियाँ कुछ तो करो...
दीप तुम कुछ देर...

हम नदी के पाट से
सूने रहे जन्मों जनम
घात और
प्रतिघात सहते
मिट गये कितने भरम
रात गहरी हो गयी फिर
नींद अब तो पग धरो
दीप तुम कुछ देर...

...

2. हमने कितने स्वाँग धरे

किंचित सुख पाने की ख़ातिर
हमने कितने स्वाँग धरे
पीड़ाओं का मोल चुका कर
समझौतों के बाण्ड भरे

सदियों-सदियों अंध गुफ़ाओं
में हमने खोजा सूरज
अर्ज़ी सौ-सौ लिख कर रक्खी
खोया नहीं कभी धीरज
जब-जब धरती हिली दर्द की,
हमने कुछ निर्वात धरे
हमने कितने...

झूठ, छद्म, धोखे के पुल को
हँस-हँस करके पार किया
गुपचुप-गुपचुप नीर बहाकर
मुस्कानों का भाग्य सिया
जब-जब लगे स्वप्न पर पहरे
हमने नींद के कान भरे
हमने कितने...

वक़्त का बस्ता बँधा हुआ है
कोई उसे कैसे समझाए
शायद कल की फ़िक्र करें हम
और नहीं वो कल फिर आए
नन्हें-नन्हें पल छिन जी लें
फिर ख़ाली जो पृष्ठ भरें
हमने कितने...

-रंजना गुप्ता

अशोक भौमिक

नागपुर में जन्मे अशोक भौमिक देश के मशहूर चित्रकारों में से एक हैं। पिछले चार दशकों में देश-विदेश में इनकी कई एकल चित्र प्रदर्शनियाँ लगीं और सराही गयीं। बहुमुखी प्रतिभा के धनी भौमिक साहित्यकार, रंगकर्मी और मूर्तिकार भी हैं। अपने पेशे के सिलसिले में उनका आजमगढ़ और इलाहाबाद के अलावा पूर्वी उत्तर प्रदेश के कई गाँवों-कस्बों से गहरा नाता रहा है।

ईमेल - bhowmick.ashok@googlemail.com

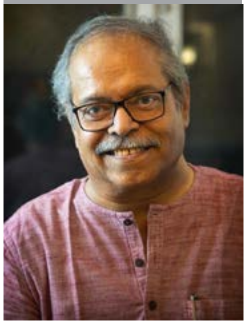

एपिटाफ

-अशोक भौमिक

> “खंडहर हो चुके इन दीवारों से टिके छत तो न जाने कब के ढह गये हैं पर शायद उन आशिकों की यादों को जिंदा रखने के लिए ही इन दीवारों ने मौसमी थपेड़ों को सहते हुए भी अपने को धूल बनने नहीं दिया। उन पर उकेरे हुए जो नाम आज भी जिन्दा हैं, उनके इस दुनिया से उठे जमाना बीत चुका है। ....”

लखनऊ तब भी काफी हद तक लखनऊ बना हुआ था !

1973-74 में भी लखनऊ की जुबान से गुलुकंद और किवाम की खुशबू गयी नहीं थी। तब भी इमामबाड़े की बावड़ी के पानी में, खामोश दोपहरियों में कभी-कभार बेगमों-नवाबों के अक्स दिखाई दे जाते थे। रेजीडेंसी के चारो ओर, हरे घास की कालीन पर एक आध प्रेमी जोड़े मौसमी फूलों के तरह सहमे-सहमे बैठे मिल जाते थे । उनमें से कोई छिप कर खँडहर की दीवार पर अपने नाम के साथ अपनी माशूका का नाम लिख कर पूरी दुनिया को अपने इश्क का यूँ ऐलान करता था, ताकि कोई सुन न पाये । पर यह ख़ामोशी, सालों साल उन दीवारों से चपकी रहती थी। रात के वक़्त , जब बारिश में ये नाम भींग कर धुँधला जाते, तो तब छोटी ईंटों से बनी इन दीवारों को ही सबसे ज्यादा तकलीफ होती थी। खँडहर की इन दीवारों ने आशिकों की कई पीढ़ियों को इनके बगल से गुजरते , प्यार करते और सपने बुनते देखें हैं । खंडहर हो चुके इन दीवारों से टिके छत तो न जाने कब के ढह गये हैं पर शायद उन आशिकों की यादों को जिंदा रखने के लिए ही इन दीवारों ने मौसमी थपेड़ों को सहते हुए भी अपने को धूल बनने नहीं दिया। उन पर उकेरे हुए जो नाम आज भी जिन्दा हैं, उनके इस दुनिया से उठे जमाना बीत चुका है। कहीं बेल-बूटों तो कहीं पानपत्तों के शक्ल वाले दिल के निशानों के साथ खूबसूरत हुरूफ़ में उकेरे इन नामों को , वक़्त के साथ साथ

धीरे धीरे धुँधलाकर ओझल होते देख, दीवारों के सीने में हूक सी उठती है। पर मज़बूरी ये कि वे रो भी नहीं सकती, क्योंकि उनकी सिसकियों से , दीवारों पर की पपड़ियाँ झरने लगती हैं जिससे धुँधलाये हुए नामों के निशाँ मिट जाते हैं। सदियों से साँस रोके खड़ी खँडहरों की इन बदरंग दीवारों की रौनक भी तो इन्हीं नामों से ही है।

जिन जिंदगियों को अब कोई याद भी नहीं करता है , रेजीडेंसी की दीवारें उनके नामों को अपने सीने से चिपकाये ज़माने का सफर तय करती रहती हैं। ऐसे ही, जब कोई कमलिनी सिन्हा अपने पति और खिलती हुई फूल सी बेटी के साथ , रेजीडेंसी घूमने आकर उस दीवार के पास आकर ठिठक जाती जहाँ उनके नाम के साथ विवेक को अपना नाम लिखे पंद्रह-बीस साल बीत चुके हैं , तो दीवारें अपने जुबान सी लेती हैं ।

कमलिनी+विवेक !

इतिहास के इस खूबसूरत पन्ने को आज कोई पलटने वाला नहीं है । विवेक मिश्रा को दुबई गए न जाने कितने साल बीत गए होंगे। पर विवेक के दुबई जाने के पहले ही कमलिनी शादी के बाद दिल्ली चली गयी थी।

कमलिनी , विवेक और उनके जैसे हज़ारों लोग आज जब कभी रेजीडेंसी की इन दीवारों पर उकेरे हुए निशानों में अपने अतीत तलाशते हैं , तब उन्हें नहीं पता होता कि इन बुढ़ी दीवारों की मोतियाबिंद से बुझी आँखें उन्हें भी निहारती हैं ।

*

रेजीडेंसी ही नहीं ,1973-74 में लखनऊ के ऐसे खंडहरों में , गली-मुहल्लों , बाग़ों और बारहदरियों के अहातों में कहानियाँ यूँ ही बनती-मिटती रहती थी। रेडियो स्टेशन के बहार किसी चाय की दूकान में कोई पंडित रघुनाथ सेठ कबाब-पराठे के एवज़ में एक पूरे गाने का सरगम लिख डालता था तो तबले के जादूगर अहमद जान थिरकवा साहब मॉरिस कालेज के पिछवाड़े बच्चों के साथ खेलते हुए अपने बचपन को लौट जाया करते थे। चित्रकार ललित मोहन सेन की ख़ुदकुशी से हज़रतगंज की शामें न जाने कितने दिनों तक ग़मगीन रहीं थीं। ऐसे ही दौर में , कान्य कुब्ज कालेज बनाबे वाले बप्पा जी के घर के पास रह रहे बंगाली वकील अतुल प्रसाद सेन अपने गीतों को रच रहे थे। ऐसे ही तमाम किस्से-कहानियों को सुनते हुए हम बड़े हो रहे थे। 1974 में मैं ग्रेजुएट हो गया था और बेरोज़गार भी ।

लखनऊ का इमामबड़ा, रेजीडेंसी, रोमी दरवाज़ा, गोमती से लेकर लाल और सफ़ेद बारहदरी जैसी जगहों के स्केच बनाने का शौक था , जो बार बार मुझे कानपुर से लखनऊ ले आता था। कुछ पढ़ कर, कुछ सुन कर और बाकी देखकर-छूकर , मुझे इन जगहों के बारे में इतनी जानकारी हो गयी थी कि मैं यह मुगालता भी पालने लगा था कि मैं किसी पेशेवर गाइड से काम नहीं था । बंगाल से आये रिश्तेदारों , उनके दोस्तों और उनके जानने-पहचानने वालों के बीच, एक गाइड की हैसियत से मेरा नाम तेजी से फैलने लगा था। बंगालियों की पर्यटन में रुचि , कईबार मुझे ऐसी दीवानगी सी लगती थी जिसका व्यवहारिकता के साथ दूर दूर का कोई रिश्ता नहीं हुआ करता था। ऐसे दीवाने लखनऊ आकर टैक्सी-टेम्पो या रिक्शे में बैठकर घूमने से बजाय टाँगे पर घूमना पसंद करते थे। दरअसल मामला नवाबों के शहर लखनऊ घूमने का है सो सवारी में भी तो एक ‘ टच ऑफ़ अवध ‘ होने

को माँगता है । इस अवध का ‘फील’ लेने के चक्कर में एक बार मेरे मौसाजी के एक दूर के एक रिश्तेदार, जो अपनी पत्नी दो जवान बेटे और एक बेटी के साथ लखनऊ घूमने आकर मुझसे लखनऊ की मर्सियागोई - मर्सियाख़्वानी सुनने की इच्छा जाहिर कर दी । अब मैं ठहरा कनपुरिया , लखनऊ की तवारीख-तहज़ीब से नावाकिफ ; मैंने ये सब शब्द मैंने कभी सुना ही नहीं था। पर बुद्धि जुटा कर मेरी इस अज्ञानता को ढँकने के लिए , उन्हें अख्तरी बाई फ़ैज़ाबादी यानि बेगम अख्तर के बंगले ले गया था । बंगले के अंदर जाने का तो कोई सवाल ही नहीं था क्योंकि कुछ ही दिन हुए थे, उनकी मृत्यु हुए । उस दिन बेगम के बंगले के बाहर खड़े , मैंने पर्यटनप्रिय बंगालियों के अंदर के उस जीन को पहचान सका था. जो कभी-कभी उनके कलाप्रेम से मिल कर एक ऐसी नायाब दीवानगी पैदा करती है, जिसे हम हिंदी प्रदेश के लोग नहीं समझ सकते। बेगम अख्तर के घर के सामने की फुटपाथ पर खड़े वे पाँचों , देर तक खामोश खड़े उस मकान की ओर यूँ एकटक देखते रहे थे कि मानो वे सब किसी ईश्वर के सशरीर प्रकट होने का इंतज़ार कर रहे हों । पूरा परिवार, अगले दिन जब तक कलकत्ते की ओर रवाना नहीं हो गया, मुझे बार बार धन्यवाद देता रहा कि मैंने उन्हें वह मकान दिखाया था , जहाँ बेगम अख्तर रहती थीं और यह उनके लखनऊ भ्रमण की सबसे बड़ी उपलब्धि थी।

“कई बार लखनऊ देखने आये मेरे परिचित सैलानियों को मैं रेजीडेंसी के बेली गारद और म्यूज़ियम दिखाने के बाद यहाँ ले आता था, जहाँ दो हज़ार से ज्यादा कब्रें थीं। मैं उन सैलानियों को लेकर विलियम कार्ट की जिंदगी के तमाम गली-कूचों के , कभी ऊबड़-खाबड़ तो कभी मखमली सपाट सड़कों पर चलता चला जाता था।“

*

ऐसे किस्से-कहानियों वाले-वक़्त में मैं लखनऊ के ईसाई कब्रगाहों की गूँगी कब्रों से दिल लगा बैठा था । मैं पहली बार रेजीडेंसी के पीछे एक कब्र के ऊपर लिखे समाधि-लेख पढ़कर स्तब्ध रह गया था। वह किसी डॉक्टर विलियम कार्ट की कब्र थी। डॉक्टर विलियम कार्ट स्कॉटलैंड के निवासी थे , 32 साल की उम्र में हिंदुस्तान आये थे और जब वे केवल 40 साल के थे स्माल पॉक्स यानी बड़ी माता निकलने से उनकी मृत्यु इसी रेजीडेंसी में हो गयी थी। डॉक्टर समझ गए थे कि यहाँ से लौटना अब कभी संभव नहीं होगा और उनका मृत शरीर को भी इसी रेजीडेंसी में ही दफनाया जायेगा ; मृत्य के पहले अपने कब्र का एपिटाफ उन्होंने खुद लिखा था।

‘ मेरी मातृभूमि , तुम्हे अलविदा ! मेरे बच्चों को अलविदा। मेरे फूटबाल टीम के साथियों को अलविदा। मेरे दुश्मनों को ढेरों प्यार। और स्टेफी डार्लिंग, तुम्हे अलविदा कहने वाला पत्थर दिल इंसान मैं नहीं था , ये तुम्हारे सिवा और कोई नहीं जानता -

तुम्हारा,

डॉक्टर विलियम कार्ट (जन्म 2 जनवरी 1816 मृत्यु 20 जुलाई 1856)

इतना लिखने के बाद डॉक्टर विलियम कार्ट ने तीन और पंक्तियाँ लिखी थीं , अपने समाधि-लेख के लिए ।

‘ अपने वतन और अपने प्रियजनों से हज़ारों मील दूर मैं, मर्लिनटाउन फुटबाल टीम स्कॉटलैंड का 7 नम्बर जर्सी वाला गोलकीपर बिल इस एकांत में आराम कर रहा हूँ । अब दोस्तों की स्मृतियों में ही घर है मेरा, किसी अनजाने स्वर्ग की ख्वाहिश लिए नहीं लेटा हुआ हूँ ,मैं यहाँ।

यहीं था मैं और यहीं रहूँगा, कृपया कोई मेरी कब्र पर आँसू न बहाये।

-विलियम कार्ट ‘

इस समाधि लेख को मैंने अपनी डायरी में लिख रखा था, पर जब भी रेजीडेंसी जाता तो एक बार जरूर डॉक्टर विलियम कार्ट से मिलने रेजीडेंसी के इस खामोश अहाते में जरूर आता। ये मेरा एक ऐसा दीवानापन था,जिसे मैं समझता तो था पर अपने आप को समझा नहीं पाता था। मुझे लगता था मर्लिनटाउन क्लब, स्कॉटलैंड के फुटबॉल टीम के सात नम्बर जर्सी वाले गोलकीपर यानी लखनऊ रेजीडेंसी के सरकारी डॉक्टर विलियम कार्ट को , मैं बहुत करीब से जनता था।

और कई बार लखनऊ देखने आये मेरे परिचित सैलानियों को मैं रेजीडेंसी के बेली गारद और म्यूज़ियम दिखाने के बाद यहाँ ले आता था, जहाँ दो हज़ार से ज्यादा कब्रें थीं। मैं उन सैलानियों को लेकर विलियम कार्ट की जिंदगी के तमाम गली-कूँचों के , कभी ऊबड़-खाबड़ तो कभी मखमली सपाट सडकों पर चलता चला जाता था। विलियम और स्टेफी और उनके बच्चों की कहानियाँ , विलियम और परमपिता ईश्वर के बीच न ख़त्म होने वाली झड़पों के किस्से और स्कॉटलैंड के फुटबॉल लीग के फ़ाइनल मैच के उस निर्णायक पेनाल्टी किक का व्योरा सुनाता था। कुछ अच्छे सुनने वाले मिल जाते तो उन्हें स्टेफी के साथ शादी के लिए विलियम को जो पापड़ बेलने पड़े थे, उसकी कहानियाँ भी सुनाता था । आज से लगभग दो सौ सालों पहले विलियम कार्ट ने चर्च में जाकर शादी करने से इंकार कर दिया था। पादरियों ने ऐलान किया था कि विलियम कार्ट कुछ अशुभ और शैतान शक्तियों के गिरफ्त में जा चुके है और उनसे कोई भी अपनी लड़की न ब्याहे। सुनने वालो को मैं और भी ऐसी तमाम कहानिया सुनाता था।

पर जो कहानी नहीं सुना सका कभी किसी सैलानी या दोस्त को , वह थी रुखसाना के साथ डॉक्टर विलियम कार्ट से पहली मुलाकात और उसके बाद की कहानी !

रुखसाना, डॉक्टर विलियम के खानसामा रहमत की इकलौती बेटी थी। मलिहाबाद का रहने वाला था रहमत। गाँव में बेटी को अकेले छोड़ कर रेज़ीडेंसी में नौकरी करना संभव नहीं था पर दूसरी ओर रेजीडेंसी में इतने बड़े बंगले में अकेले रह रहे विलियम कार्ट के यहाँ रुखसाना को रखना भी दूसरों के लिए मसालेदार चाट परोसने जैसा था । रेजीडेंसी में बिटिया और डॉक्टर को लेकर न जाने कैसे कैसे किस्से गढ़े जाते और फिर उन किस्सों के पर निकलने और परिंदे बन कर उड़ते-उड़ते मलिहाबाद पहुँचने में भी कोई ज्यादा वक़्त नहीं लगने वाला था।

पर कर भी क्या सकता था रहमत , अपनी बिरादरी वालों की खरी खोटी सुनते हुए भी वह रुखसाना को अपने साथ रेजीडेंसी ले आया था ।

रुखसाना के घर आते ही डॉक्टर विलियम का घर की शक्ल ही बदल गयी। डॉक्टर विलियम अपनी टूटी फूटी हिंदी में उसे अंग्रेजी सीखने की कोशिश करता और रुखसाना उसे उर्दू ! रुखसाना उसे सोहर और होली सुनाती तो डॉक्टर साथ गुनगुनाने लगता था। दोनों में किसीको पता भी नहीं चला कि कब वे एक दुसरे को चाहने लगे थे। पर तभी लखनऊ के कई इलाकों में स्माल-पॉक्स फैलने की खबर आने लगी और एक दिन डॉक्टर खुद इस रोग के चपेट में आ गया।

किस्मत के इस पेनल्टी किक को सात नम्बर जर्सी वाला गोलकीपर नहीं रोक पाया !

“आज से लगभग दो सौ साल पहले विलियम कार्ट ने चर्च में जाकर शादी करने से इंकार कर दिया था। पादरियों ने ऐलान किया था कि विलियम कार्ट कुछ अशुभ और शैतान शक्तियों के गिरफ्त में जा चुके हैं और उनसे कोई भी अपनी लड़की न ब्याहे। सुनने वालों को मैं और भी ऐसी तमाम कहानियाँ सुनाता था..”

डॉक्टर विलियम को जब माता निकली तो सभी ने रहमत को रेजीडेंसी से भाग निकलने की सलाह दी थी पर डॉक्टर की तीमारदारी में बाप और बेटी जी जान से लगे रहे। दूसरे बंगलों में काम कर रहे चौकीदार-बावर्ची-खानसामा, सबों ने एक ही बात कहीं कि ‘ अब भी वक़्त है भाग जा वार्ना डाक्टर साहब के साथ-साथ बाप, बेटी दोनों मरोगे। ‘ आख़री वक़्त पर डॉक्टर से रेजीडेंसी के उनके दोस्तों ने भी मिलना बंद कर दिया था। रेजीडेंसी के कमरे के अंदर आशिकों की एक बेजुबान जोड़ी बस रोती रही । डॉक्टर विलियम को मरने का अफ़सोस नहीं था , शायद अपनी जिंदगी के बारे में वे बहुत कुछ लिखना-कहना चाहते थे , पर उसके लिए उनके पास अब वक़्त नहीं बचा था। तभी उन्होंने अपना एपिटाफ लिखने का ख्याल आया । ‘ रहमत , क्या चार छह लाइनों में एक जिंदगी की कहानी नहीं कहीं जा सकती ?’

रहमत बेचारा कुछ समझता पर बहुत कुछ नहीं समझ पाता था। रुखसाना नीम की डाल को पंखा बना कर झलती रहती थी, दिन रात। डॉक्टर विलियम ने बहुत कम उम्र में ही अपने ईश्वर से फजीहत मोल लिया था और इसीलिए ऊपर वाले ने खूब तड़पाया मर्लिनटाउन क्लब के उस गोलकीपर को । पहले-पहले रहमत और रुखसाना खुदा से डॉक्टर के ठीक होने की दुआ माँगते रहे पर बाद में अल्लाहताला से ही डॉक्टर की मौत के लिए मिन्नत करनी पड़ रही थी ।

ऐसे ही एक दिन डॉक्टर ने रहमत से पुछा था , ‘ रहमत , क्या चार छह लाइनों में एक जिंदगी की कहानी नहीं कहीं जा सकती ?’

फिर एक परचा निकाल कर अपना एपिटाफ पढ़ कर दोनों को सुनाया था । रुखसाना को अंग्रेजी समझ में नहीं आयी पर अपना और अपने बाप का नाम सुन कर इतना भर समझ सकी की डॉक्टर विलियम उन दोनों का शुक्रिया अदा कर रहे थे।

‘मेरी मातृभूमि , तुम्हे अलविदा ! मेरे बच्चों को अलविदा। मेरे फूटबाल टीम के साथियों को अलविदा। मेरे दुश्मनों को ढेरों प्यार। और स्टेफी

डार्लिंग, तुम्हे अलविदा कहने वाला पत्थर दिल इंसान मैं नहीं था , ये तुम्हारे सिवा और कोई नहीं जानता -

तुम्हारा

डॉक्टर विलियम कार्ट (जन्म 2 जनवरी 1826 मृत्यु 20 जुलाई 1856)

इतना लिखने के बाद डॉक्टर विलियम कार्ट ने तीन और पंक्तियाँ लिखी थीं , अपने समाधि-लेख के लिए ।

‘ अपने वतन और अपने प्रियजनों से हज़ारों मील दूर मैं, मर्लिनटाउन फुटबाल टीम स्कॉटलैंड का 7 नम्बर जर्सी वाला गोलकीपर बिल इस एकांत में आराम कर रहा हूँ । अब दोस्तों की स्मृतियों में ही घर है मेरा, किसी अनजाने स्वर्ग की ख्वाहिश लिए नहीं लेटा हुआ हूँ ,मैं यहाँ।

रहमत मियाँ और मेरी प्यारी रुखसाना तुम दोनों के साथ मैं यहीं था और मैं यहीं रहूँगा, मेरी कब्र पर आँसू न बहाना।

विलियम कार्ट

7 नम्बर जर्सी वाला गोलकीपर बिल’

*

तब रेजीडेंसी से लगा एक चर्च हुआ करता था , जो आज खँडहर में बदल चुका है । डॉक्टर विलियम के आख़री वक़्त पर उस चर्च के बड़े पादरी आये थे , धार्मिक पुस्तक से कुछ जरूरी अंश पाठ करने। कमज़ोर हाथों से डॉक्टर ने अपने समाधि लेख का परचा बड़े पादरी को सौपा था , जैसे चलते चलते कोई किसी अपने को वसीयत सौपता है।

डॉक्टर विलियम कार्ट के मौत के साथ साथ एक कहानी का भी अंत हुआ। पर क्या कहानियाँ, ख़त्म भी होती हैं कभी ?

*

डॉक्टर को दफ़नाने के कुछ दिनों बाद , उनका कब्र बनकर जब तैयार हुआ तो सभी , काले पत्थर पर उकेरे हुए , डॉक्टर विलियम का अपने हाथ से लिखे समाधि-लेख को पढ़ कर एक अनजाने विलियम को जानने की कोशिश कर रहे थे। सच, तीन लाइनों में भी एक जिंदगी पढ़ी जा सकती है , बशर्ते उसे ईमानदारी से लिखा गया हो।

डॉक्टर विलियम कार्ट को गए कुछ ही महीने बीते थे , कि तभी 30 जून 1857 को अंग्रेज हुकूमत के हिंदुस्तानी फौजियों ने रेजीडेंसी को घेर कर तोप के गोलों के वार से रेजीडेंसी को एक खंडहर में बदल दिया। इसके बाद कौन जिन्दा बचा और कौन कहाँ गया इसका किसी कोई खबर नहीं रही । रहमत और रुखसाना भी कहीं खो गये ।

पर डॉक्टर विलियम कार्ट की कब्र वहाँ आज भी है और धूल-मिटटी की मोटी परतों के नीचे दबा हुआ वह एपिटाफ भी है।

पर कब्र की उस पत्थर पर रुखसाना और रहमत का कहीं नाम नहीं है !

-अशोक भौमिक

सुमन कुमार सिंह

बिहार के बेगूसराय में जन्मे सुमन कुमार सिंह पटना के कला एवं शिल्प महाविद्यालय से पेंटिंग विषय में स्नातक हैं। वह ललित कला अकादमी, नई दिल्ली के राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी समेत विभिन्न कला प्रदर्शनियों में भागीदारी कर चुके हैं। हिंदी दैनिक राष्ट्रीय सहारा के कला विभाग में कार्यरत सुमन वर्ष 1997 से नियमित रूप से पत्र-पत्रिकाओं में कला-लेखन कर रहे हैं।

ईमेल - singhh63@gmail.com

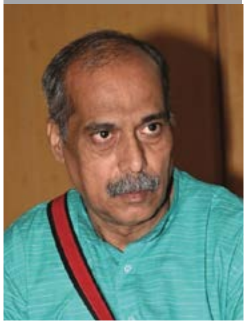

मानवाधिकारों का पहरुआ: ऐ वेईवेई

-सुमन कुमार सिंह

“युवा वेईवेई की रुचि कला में थी, इसे देखते हुए 1978 में उन्होंने बीजिंग फिल्म अकादमी में दाखिला लिया। हालांकि उन्हें जिंगक्सिंग (“स्टार्स”) नामक अवांगार्द कलाकार समूह के साथ जुड़कर अधिक रचनात्मक और बौद्धिक दृष्टि मिली...”

“आप कभी नहीं जान सकते कि शक्तिशाली कौन है, कौन नहीं; लेकिन आप हमेशा यह पता लगा सकते हैं कि शक्तिशाली लोग डरते किससे हैं। देश के तौर पर चीन इतना शक्तिशाली दिखता है, लेकिन ये लोग इंटरनेट से बहुत डरते हैं, इसका मतलब इंटरनेट उनसे अधिक शक्तिशाली है।”

“चीन में संस्कृति को नियंत्रित करने वालों की खुद अपनी कोई संस्कृति नहीं है।”

“खुद को व्यक्त करना एक नशे की तरह है। और मुझे इसकी लत है।”

“मुझे लगता है कि कला मानव स्वतंत्रता हासिल करने के लिए एक बहुत ही महत्वपूर्ण हथियार है”

क्या कोई कलाकार किसी ताकतवर समझे जानेवाले मुल्क के लिए खतरनाक हो सकता है? आपका जवाब शायद नहीं हो किन्तु चीन की मौजूदा सरकार जिन्हें अपने लिए बड़ा खतरा मानती है उनमें से एक कलाकार भी है। वह भी एक ऐसा कलाकार जिसकी ख्याति वैश्विक कला जगत में उसके मूर्तिशिल्पों, संस्थापनों, वास्तुशिल्प परियोजनाओं, तस्वीरों और वीडियो आर्ट की वजह से है। यहाँ तक कि इस कलाकार को अपने देश में पहले तो नज़रबंदी एवं गिरफ़्तारी और फिर इतना कुछ झेलना पड़ता है कि अंततः वह अपने देश से निर्वासित होने को मज़बूर हो जाता है। किन्तु इसके बाद भी मानवाधिकारों के लिए इसकी लड़ाई जारी ही रहती है, वह भी दुनिया के विभिन्न हिस्सों में रहते हुए। यूं तो एक कलाकार के तौर पर वेईवेई अपनी कलाकृतियों के माध्यम से मानवीय संवेदनाओं को उजागर

करने से लेकर त्रासदियों एवं किसानों के हितों की लड़ाई लड़ने वाली अपनी छवि प्रस्तुत करते हैं। किन्तु मेरी समझ से जो बात उन्हें अन्य कलाकारों से अलग करती है वह है मानवाधिकारों की लड़ाई से जुडी उनकी प्रतिबद्धता।

ऐ वेईवेई (जन्म 28 अगस्त 1957) एक ऐसे चीनी समकालीन कलाकार और राजनैतिक कार्यकर्ता हैं, जिन्हें वहां की सरकार आज भी अवांछित के तौर पर ही देखती है। वेईवेई का जन्म तो बीजिंग में हुआ लेकिन पले-बढे चीन के सुदूर उत्तर-पश्चिम में, जहां उनके पिता को निर्वासित जीवन बिताना पड़ा। वेईवेई के पिता ऐ क्विंग चीन के सबसे प्रसिद्ध कवियों में से माने जाते थे। वेईवेई के जन्म के कुछ समय बाद कम्युनिस्ट अधिकारियों ने उन पर दक्षिणपंथी होने का आरोप लगाया, और परिवार को दूरदराज के इलाकों में निर्वासित कर दिया। जहाँ से 1976 की सांस्कृतिक क्रांति के बाद उन्हें बीजिंग लौटने की अनुमति मिली, इससे पहले का समय उन्हें उत्तरपूर्वी प्रांत हेइलोंगजियांग और फिर शिनजियांग के उत्तर-पश्चिमी स्वायत्त क्षेत्र में गुजारना पड़ा था।

युवा वेईवेई की रुचि कला में थी, इसे देखते हुए 1978 में उन्होंने बीजिंग फिल्म अकादमी में दाखिला लिया। हालांकि उन्हें जिंगक्सिंग (“स्टार्स”) नामक अवांगार्द कलाकार समूह के साथ जुड़कर अधिक रचनात्मक और बौद्धिक दृष्टि मिली। चीनी समाज के प्रतिबंधों से बचने के लिए, वह 1981 में संयुक्त राज्य अमेरिका चले गए। जहाँ न्यूयॉर्क शहर में बसने के बाद, उन्होंने पार्सन्स स्कूल ऑफ़ डिज़ाइन से शिक्षा ली, साथ ही वहां के सक्रिय कलाकारों के संपर्क में रहने लगे। वेईवेई ने शुरू में अपना ध्यान पेंटिंग पर केंद्रित किया, लेकिन जल्द ही उनका विशेष रुझान मूर्तिकला की तरफ होता चला गया।

इस दौरान वे फ्रांसीसी कलाकार मार्सेल

डयूचैम्प और जर्मन मूर्तिकार जोसेफ बेयस की कलाकृतियों से प्रेरित होते चले गए। 1988 में न्यूयॉर्क शहर में एक एकल शो में प्रदर्शित उनकी शुरुआती कृतियों में डयूचैम्प की प्रोफ़ाइल के आकार में एक तार हैंगर था। वेईवेई अपने इस दौर में कोई खास व्यावसायिक सफलता हासिल नहीं कर पाए और 1993 में अपने पिता की बीमारी की वजह से वे बीजिंग लौट आए। इस दौरान एक राजनैतिक कार्यकर्ता के रूप में, वह खुले तौर पर लोकतंत्र और मानवाधिकारों पर चीनी सरकार के मुखर आलोचक बन सामने आये। 2008 के सिचुआन प्रान्त में आये भूकंप के दौरान स्कुल भवनों के धराशायी होने एवं उसके कारण हुए बच्चों की असामयिक मौत से उद्वेलित होकर वे स्थानीय प्रशासन में व्याप्त सरकारी भ्रष्टाचार को उजागर करने लगे। व्यवस्था विरोधी उनके तेवरों एवं अन्य कारणों से अंततः 2011 में उन्हें 3 अप्रैल को बीजिंग इंटरनेशनल एयरपोर्ट पर गिरफ्तार कर लिया गया। इसके बाद उन्हें 81 दिनों तक बिना किसी आरोप के हिरासत में रखा गया।

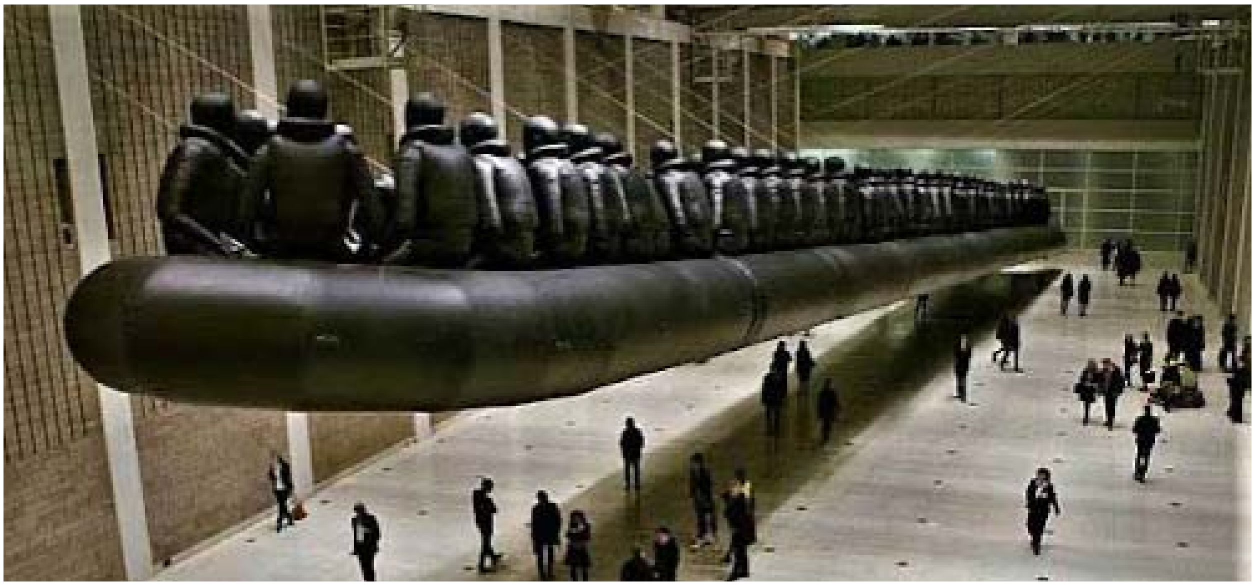

2011 में वेईवेई अंतरराष्ट्रीय पहल की उस जूरी के सदस्य बने, जो मानव अधिकारों के लिए एक सार्वभौमिक लोगो चुनने के लिए बनाया गया। कुल 190 से अधिक देशों से आयी 15,300 से अधिक प्रविष्टि में से अंततः जो लोगो चुना गया वो आज हमारे सामने है। इसके डिज़ाइनर हैं सर्बिया के प्रेड्रैग स्टाकिक। मानवाधिकारों को लेकर उनकी प्रतिबद्धता को इस बात से समझा जा सकता है की जब 2013 में बुश प्रशासन के दौर में प्रिज्म निगरानी कार्यक्रम का खुलासा हुआ तब उन्होंने कहा- "भले ही हम जानते हैं कि सरकारें हर तरह की चीजें करती हैं, मैं अमेरिकि निगरानी ऑपरेशन, प्रिज्म के बारे में जानकारी से हैरान हूँ। मेरे लिए, यह सरकारी शक्तियों का दुरुपयोग है। यह नागरिकों की निजता में हस्तक्षेप है। यह अंतरराष्ट्रीय समाज के लिए व्यक्तिगत अधिकारों पर पुनर्विचार करने और उनकी रक्षा करने के लिए एक महत्वपूर्ण क्षण है।"

इतना ही नहीं वेईवेई लंबे समय से जूलियन असांजे की रिहाई की वकालत भी करते

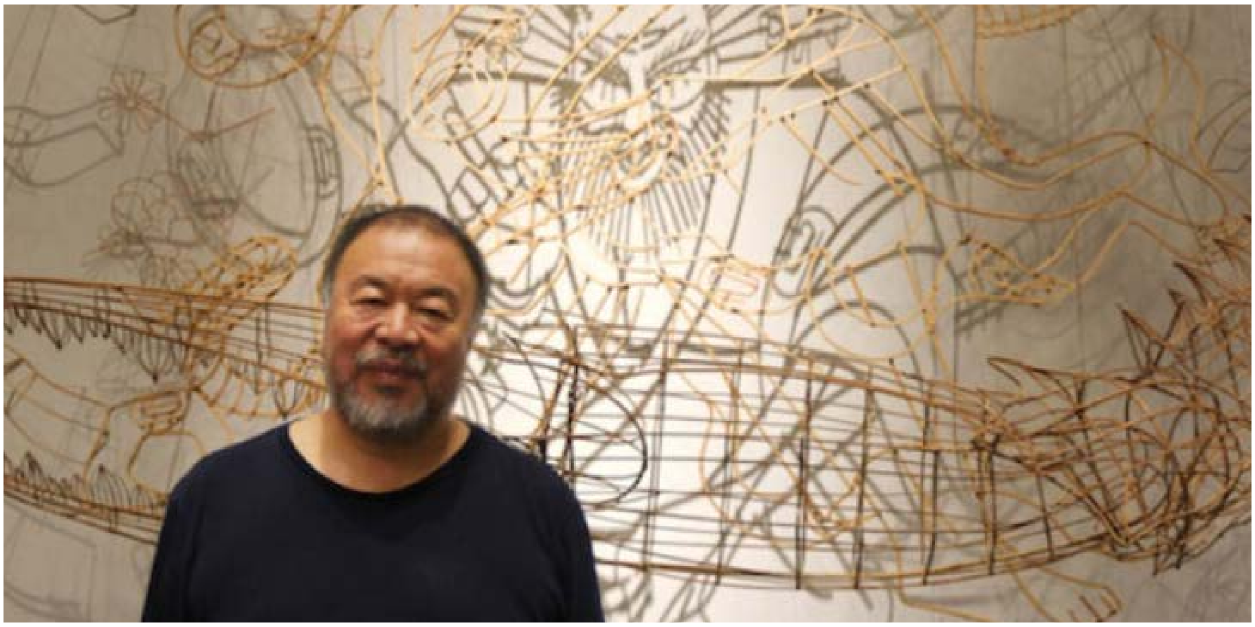

रहे हैं। 2016 में, उन्होंने एक पत्र पर सह-हस्ताक्षर भी किए, जिसमें कहा गया था कि यूके और स्वीडन संयुक्त राष्ट्र के एक कार्यकारी समूह के निष्कर्षों की अनदेखी करके संयुक्त राष्ट्र को कमजोर कर रहे हैं, और असांजे को मनमाने ढंग से हिरासत में लिया जा रहा है। इस पत्र में यूके और स्वीडन से असांजे की आवाजाही की स्वतंत्रता की गारंटी देने और मुआवजा प्रदान करने का आह्वान किया भी गया था। यूके द्वारा असांजे की गिरफ्तारी के बाद ऐ ने उच्च्य सुरक्षा वाले बेलमर्श जेल का दौरा किया। सितंबर 2019 में वेईवेई ने लंदन के ओल्ड बेली कोर्ट के बाहर असांजे के समर्थन में मौन विरोध प्रदर्शन किया,जहां असांजे के प्रत्यर्पण की सुनवाई हो रही थी। वहां से उन्होंने असांजे की स्वतंत्रता का आह्वान किया और कहा “वह (असांजे) वास्तव में इस बात के मूल मूल्य का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसके लिए हम सभी लड़ रहे हैं यानी प्रेस की स्वतंत्रता”।

2021 में वेईवेई को यूनाइटेड किंगडम के वर्चुअल कला प्रदर्शनी “द ग्रेट बिग आर्ट एक्जीबिशन में आमंत्रित किया गया, जिसे फर्स्टसाइट द्वारा आयोजित किया गया था। ‘राजनीतिक कैदियों के लिए पोस्टकार्ड’ नामक वेईवेई के इस संस्थापन में इक्वाडोर के दूतावास में असांजे द्वारा उपयोग की जाने वाली मशीन की एक तस्वीर शामिल भी थी। उनके प्रस्ताव को स्वीकार करने के बाद, फर्स्टसाइट के निदेशक ने समय की कमी और प्रदर्शनी की अवधारणा के साथ फिट नहीं होने का हवाला देकर इसे प्रदर्शित नहीं होने दिया। हालाँकि वेईवेई का मानना था कि इस अस्वीकृति का कारण यह था कि प्रदर्शनी “असांजे जैसे विषय को छूना नहीं चाहती थी”।

आज वेईवेई को चीन ही नहीं विश्व के सबसे प्रसिद्ध कलाकार के रूप में जाना जाता है। अपनी रचनाओं में वीडियो, फोटोग्राफी, वॉलपेपर और पोर्सिलेन का उपयोग करते हुए मानवाधिकारों के हनन पर लगातार सवाल खड़े करते रहना अब उनकी फितरत बन चुकी है।

-सुमन कुमार सिंह ■

चित्र और चित्रकार

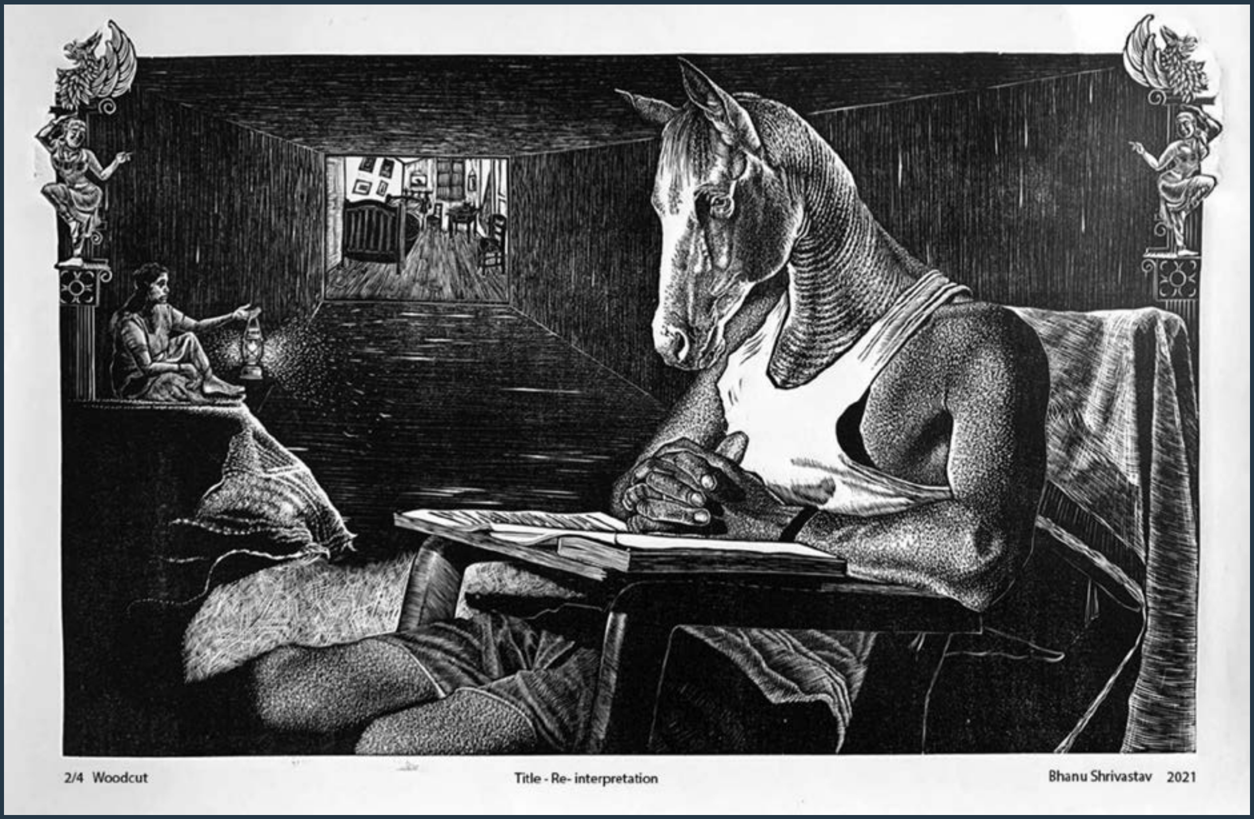
2/4 Woodcut
Title - Re- interpretation
Bhanu Shrivastav 2021

चित्रकार : भानु श्रीवास्तव
टाइटल: री-इंटरप्रिटेशन
माध्यम : जाइलोग्राफ (एल पी. इंक)
साइज : 30/40, 2022

TAGORE INTERNATIONAL
LITERATURE & ARTS FESTIVAL
विश्व रंग

चित्रकार भानु श्रीवास्तव को इस वर्ष टैगोर नेशनल एग्ज़िबिशन ऑफ पेंटिंग -विश्व रंग भोपाल में इनकी इस कलाकृति को सर्वश्रेष्ठ कलाकृति के रूप में पुरस्कृत किया गया है. जिसमें इन्हे 50,000 / की राशि और प्रसस्ति पत्र देकर सम्मानित किया गया.